बिहारवासियों के नाम चिट्ठी

[बिहारवासियों को संबोधित की गयी यह चिट्ठी पूरे भारत की जनता और युवकों के नाम है]

•

जयप्रकाश नारायण

•

तरुण क्रांति, संघर्ष कार्यालय, पटना

बिहारवासियों के नाम चिट्ठी

प्यारे भाइयो, बहनो और युवक मित्रो !

मैं गत २० जुलाई को काफी दिनों के बाद बिहार लौटा। पिछले साल २३ जून को मैंने पटना छोड़ा था और यहाँ से दिल्ली गया था। वहीं २६ जून को सुबह (लगभग ३ बजे) गांधी शांति प्रतिष्ठान में जहाँ मैं ठहरा हुआ था, गिरफ्तार कर लिया गया। दिल्ली से कार पर मुझे हरियाणा प्रदेश के अंतर्गत सोहना नामक स्थान पर ले जाया गया और वहाँ एक बंगले (रेस्ट-हाउस) में रखा गया। सोहना पहुँचते ही मैंने देखा कि श्री मोरारजी भाई देसाई भी गिरफ्तार करके ले आये गये हैं। हम दोनों उसी बंगले में अलग-अलग कमरों में रखे गये। उनसे फिर मेरी मुलाकात नहीं हुई, बावजूद इसके कि वे उसी बंगले में रखे गये। मैंने वहाँ के पुलिस अधिकारी से, जिनके संरक्षण में हम थे, अनुरोध भी किया कि कम-से-कम भोजन के समय तो हम दोनों को मिलने दें। परंतु मेरी यह छोटी-सी प्रार्थना भी अनसुनी कर दी गयी।

पहले सोहना, फिर चंडीगढ़

सोहना बंगले में केवल तीन दिन मैं रहा। इसी बीच मेरा हृदय-रोग कुछ उभर आया था। यह रोग मुझे पहले से था। परंतु गिरफ्तारी के पहले तक मैं सामान्यतः स्वस्थ था। जब सोहना में सरकारी डाक्टरों ने मेरे स्वास्थ्य की परीक्षा की तो उन्हें मेरे हृदय में कुछ गड़बड़ी मालूम हुई। उनकी समझ में नहीं आया कि क्या करें। इसलिए २९ जून को दिल्ली-स्थित आल इंडिया इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल सायन्सेज में

आवश्यक जाँच और चिकित्सा के लिए मुझे ले गये। वहाँ मेरे कुछ पूर्व परिचित डाक्टर थे, जैसे डा० सुजय बो० राय (अब स्वर्गीय), डा० एम० एल० भाटिया आदि, जिन्होंने पहले भी मेरी चिकित्सा की थी। उनकी देखरेख में दो दिन मुझे रखा गया और १ जुलाई की शाम को एयर फोर्स के विमान से मुझे चंडीगढ़ पहुँचा दिया गया। वहाँ मुझे पी० जी० आई० (पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल एडुकेशन एंड रिसर्च) के अस्पताल में रखा गया। तब से रिहाई के दिन (१२ नवम्बर, '७५) तक वहीं चंडीगढ़ में मैं नजरबंद रहा।

एकाकी कारावास

चंडीगढ़ में बंदी-जीवन की एक लंबी कहानी है। अभी इतना ही कहना चाहता हूँ कि नजरबंदी के साढ़े चार महीनों के दौरान मैं बिलकुल अकेला ही रहा। यह अकेलापन ही मेरे लिए सबसे ज्यादा अखरनेवाली बात थी। चंडीगढ़ के जिलाधिकारी, अस्पताल के डाक्टर, नर्स आदि अवश्य मुझसे मिलते थे; परंतु वे केवल मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ कर चले जाते थे। वहाँ कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जिससे मैं अपने मन की बात कह सकता। साथी का यह अभाव मुझे अंत तक खलता रहा। मैंने सरकार से अनुरोध भी किया कि मेरे साथ ऐसे किसी व्यक्ति को रहने दिया जाये जिनसे मैं दो बातें कर सकूँ और अपने विचारों-भावनाओं का आदान-प्रदान कर सकूँ। देश की विभिन्न जेलों में हमारे आंदोलन के हजारों साथी बंद पड़े थे उनमें से ही किन्हीं एक को चंडीगढ़ में मेरे साथ रखा जा सकता था। परंतु सरकार ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। इस दृष्टि से इंदिराजी की सरकार का मेरे साथ व्यवहार विदेशी अंग्रेज सरकार के व्यवहार से भी बुरा था। क्योंकि सन् '४२ के आंदोलन के सिलसिले में जब मैं (१९४३ में) गिरफ्तार होकर लाहौर किले में दाखिल हुआ तो पहले वहाँ भी कुछ महीनों तक मुझे बिलकुल अकेला ही रखा गया और मैं सरकार से साथी की माँग करता रहा। अंत में उस विदेशी सरकार ने भी मेरी प्रार्थना सुनी, और जब डा० राममनोहर लोहिया लाहौर किले में लाये गये तो हर दिन एक घंटे तक उनसे मिलने और बातचीत करने की इजाजत मुझे मिली। लेकिन इस स्वदेशी सरकार का रवैया तो अजीब

रहा ! हाँ, कुछ दिनों के बाद वह इसके लिए तैयार हुई कि मैं चाहूँ तो अपने निजी सेवक गुलाब यादव को साथ रख सकता हूँ। परंतु मुझे तो सेवक से अधिक साथी को जरूरत थी। इसके अलावा गुलाब भी कैदी बनकर ही मेरे साथ रह सकता था। यानी एक बार मेरे साथ रहने पर उसको फिर बाहर जाने की इजाजत नहीं मिलती। यह मुझे मंजूर नहीं था कि वह भी मेरे साथ बिना कसूर कैदी बनकर रहे। इस प्रकार आखिर तक मुझे अकेला ही रहना पड़ा, और यही मेरे लिए सबसे बड़ी सजा थी।

चंडीगढ़ का बंदीगृह

चंडीगढ़ अस्पताल के जिस कमरे में मुझे नजरबंद रखा गया था, वहाँ घूमने के लिए केवल एक तंग गलियारा (कॉरीडोर) था जिसके दोनों तरफ के कमरों में सशस्त्र पहरेदार रखे गये थे। हृदय का रोगी होने के कारण मैं खुली हवा मे घूमना-फिरना चाहता था। बहुत आग्रह करने पर करीब ढाई महीने के बाद १८ सितम्बर को मुझे अस्पताल के ही हाते में स्थित उसके अतिथि-भवन में ले जाकर रखा गया जिसके सामने के मैदान में मैं थोड़ा टहल-फिर सकता था। परंतु वहाँ मैं कुछ ही दिन रह पाया, क्योंकि अचानक एक दिन (२७ सितम्बर को) मेरे पेट में भयानक दर्द शुरू हुआ। वैसे दर्द का अनुभव मुझे जीवन में पहले कभी नहीं हुआ था। डाक्टरों ने दवाएँ दीं, जिससे दर्द कम हो गया। परन्तु ८ अक्तूबर को और फिर अक्तूबर के ही आखिरी दिनों में वैसा ही दर्द शुरू हुआ। उसके कारणों की जाँच और चिकित्सा के लिए मुझे ३१ अक्तूबर को फिर अस्पताल के उसी कमरे में ले आया गया जहाँ मैं पहले था, और रिहाई के दिन तक वहीं रहा। १२ नवम्बर, ७५ को उसी कमरे से अधमरा होकर मैं निकला।

मेरी रिहाई

सरकार ने मुझे रिहा किया जब उसे विश्वास हो गया कि मेरा रोग असाध्य है और मैं थोड़े ही दिन जीवित रहनेवाला हूँ। उसने पहले मुझे एक माह के पेरौल पर छोड़ा। मैंने पेरौल की माँग तो नहीं की थी

इसलिए जब मैंने चंडीगढ़ के अधिकारियों से पूछा कि यह पेरौल की क्या बात है, तो उन्होंने कहा कि पेरौल तो एक बहाना है, आप बिना शर्त छोड़े जा रहे हैं। फिर जब मैं जसलोक अस्पताल में दाखिल हुआ तो उसके दस-बारह दिन बाद ही (४ दिसम्बर, '७५ का) मुझ पर से नजरबंदी का आदेश भी उठा लिया गया।

गुर्दे का रोग

रिहाई के केवल एक सप्ताह पहले मुझे बताया गया कि मेरे दोनों गुर्दे (किडनी) बेकार हो गये हैं। गिरफ्तारी के पूर्व गुर्दे का कोई रोग मुझे नहीं था। चंडीगढ़ में भी चार महीनों की नजरबंदी के दौरान डाक्टरों ने कभी नहीं बताया कि मेरे गुर्दों में कोई खराबी है। एकाएक ५ नवम्बर, '७५ को आवश्यक जाँच के बाद उन्होंने घोषित किया कि मेरे दोनों गुर्दे बिलकुल खराब हो गये हैं। आज तक मेरी समझ में नहीं आया है कि यह रोग मुझे कब, कहाँ, और कैसे लग गया। जो दवा दी गयी वह मैंने ली, जो खाना दिया गया वह मैंने खाया, फिर क्या हो गया समझ में नहीं आता। मेरे बहुत सारे मित्रों को यह शंका है और मुझे भी कभी-कभी सन्देह होता है कि कहीं जानबूझकर तो मेरे गुर्दे खराब नहीं कर दिये गये। चंडीगढ़ अस्पताल के डाक्टरों का व्यवहार मेरे प्रति बहुत अच्छा था। इसलिए उनपर मुझे अविश्वास नहीं है। कोई डाक्टर ऐसा जघन्य कार्य कर भी कैसे सकता है? लेकिन मेरे रोग की पहचान करने में उनको बहुत देर हो गयी। बम्बई के डाक्टरों का ख्याल है कि अगर पन्द्रह दिन पहले भी मैं जसलोक अस्पताल में पहुँच गया होता, तो मेरे गुर्दे आंशिक रूप से बचा लिये जाते। अब यह तो भगवान ही जाने कि अचानक मेरे गुर्दे कैसे बिलकुल खराब हो गये। एक बात निश्चित है कि मुझे छोड़ा तभी गया जब इंदिरा जी के शासन को यह विश्वास हो गया कि मैं अब कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ।

ईश्वर ने बचाया

चंडीगढ़ से छूटकर पहले मैं दिल्ली आल इंडिया इंस्टीच्यूट आफ मेडिकल सायंसेज में आकर पाँच-छः दिन रहा। वहाँ के डाक्टर चाहते

थे कि मैं वहीं रहकर चिकित्सा कराऊँ। सरकार भी यही चाहती थी। परन्तु मेरे भाई (श्री राजेश्वर प्रसाद) को दिल्ली पर भरोसा नहीं था। मैं भी चाहता था कि बम्बई जाकर जसलोक अस्पताल में चिकित्सा कराऊँ। इसलिए वे मुझे बंबई ले गये और वहाँ २२ नवम्बर, '७५ को जसलोक अस्पताल में मैं भर्ती किया गया। चंडीगढ़ में ही मेरी हालत खतरनाक हो गयी थी। हाथ-पैर सूज गये थे, पैरों की उँगलियाँ मुड़ गयी थीं। आँखों के नीचे का भाग सूजकर नीचे लटक गया था, यानी मैं बिलकुल मरणासन्न था। लेकिन जसलोक अस्पताल के डाक्टरों की सूझ-बूझ और मेहनत के फलस्वरूप मैं बचा लिया गया। हालांकि वहाँ के डाक्टर आज भी मुझसे कहते हैं कि हमने तो आपको नहीं बचाया, आप अपनी इच्छा-शक्ति से बच गये। परन्तु मैं मानता हूँ कि ईश्वर की कृपा मुझ पर थी, इसलिए ही मैं बच पाया। पता नहीं वह और क्या काम मुझसे लेना चाहता है।

अब मशीन के सहारे जिन्दा हूँ

इस प्रकार मौत के मुँह से निकलकर मैं आपके बीच लौटा हूँ। लेकिन जैसा कि ऊपर बता चुका हूँ, मेरे दोनों गुर्दे हमेशा के लिए खराब हो चुके हैं, नष्ट हो चुके हैं। उनके पुनर्जीवित होने की आशा नहीं के बराबर है। इसलिए अब मैं कृत्रिम गुर्दा मशीन के सहारे जिन्दा हूँ और इसी के सहारे शेष जीवन व्यतीत करना होगा। इस मशीन से मेरे खून की सफाई सप्ताह में तीन दिन की जाती है जिसको डायलीसिस की क्रिया कहते हैं। चूँकि मेरे अपने गुर्दे काम नहीं करते, इस कारण मेरे खून की सफाई स्वाभाविक रीति से नहीं हो पाती। अतः कृत्रिम यंत्र के सहारे यह क्रिया होती है जो लगातार सात घंटे तक चलती है। यह एक बहुत ही नाजुक और थकानेवाली प्रक्रिया है। इन सात घंटों में मेरे शरीर का सारा खून एक नली के सहारे कृत्रिम गुर्दा यंत्र में जाता है और वहाँ साफ होकर दूसरी नली के सहारे शरीर में पुनः प्रवेश करता है। हर तीसरे दिन इस प्रक्रिया से मुझे गुजरना पड़ता है और जिन्दगी भर गुजरना पड़ेगा। वैसे मेरा सामान्य स्वास्थ्य पहले से अच्छा है। शरीर में कुछ शक्ति लौटी है और शाम-सुबह आध घण्टे मैं टहल-घूम सकता हूँ। सबसे

खुशी और आश्चर्य की बात यह है कि मेरे हृदय की हालत पहले से अच्छी हो गयी है। शायद यही वजह है कि मैं लगातार इतने दिनों तक डायलीसिस बर्दाश्त कर सका हूँ।

धन्य जसलोक !

जब तक मैं बंबई में था, मेरी चिकित्सा जसलोक अस्पताल में निःशुल्क चलती रही। यह चिकित्सा बड़ी खर्चीली है और पिछले सात-आठ महीनों में जसलोक अस्पताल ने मुझ पर हजारों रुपये खर्च किये हैं। इसके लिए उसके ट्रस्टी-बोर्ड के अध्यक्ष सेठ मथुरादास आँसूमल, जो मेरे पुराने मित्र रहे हैं तथा जिन्होंने मेरी चिकित्सा में गहरी दिलचस्पी ली, तथा अन्य ट्रस्टियों के प्रति मैं बहुत-बहुत आभारी हूँ और आजीवन रहूँगा। जसलोक अस्पताल के निदेशक डा० शांतिलाल मेहता, मुख्य गुर्दा-विशेषज्ञ (नेफ्रॉलॉजिस्ट) डा० एम० के० मणि, शल्य-चिकित्सक डा० कामथ तथा हृदय-विशेषज्ञ डा० ए० बी० मेहता का एवं अन्य डाक्टरों का भी मैं बहुत शुक्रगुजार हूँ जिनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप मुझे यह नया जीवन प्राप्त हुआ। इस अस्पताल से मेरा आत्मीय संबंध पहले से रहा है। इसके संस्थापक स्व० सेठ लोकूमल घनश्याम चनराय मेरे प्रिय मित्र थे। उनके जैसे उदार व्यक्ति बिरले ही मिलते हैं। वे निःसंतान थे। अतः अपनी सारी संपत्ति उन्होंने इस अस्पताल के निर्माण में लगा दी। इस प्रकार यह अस्पताल सेठ लोकूमल की दान-शीलता का उज्ज्वल उदाहरण है। इस अस्पताल को अपना मानकर ही मैं वहाँ चिकित्सा के लिए गया था और उसके संचालकों और चिकित्सकों ने भी यह अपनापन भलीभाँति निबाहा।

स्वास्थ्य-सहायता-कोष

लेकिन जीवन भर जसलोक अस्पताल में मेरी चिकित्सा चले, यह तो संभव और उचित भी नहीं था। इसलिए मेरे मित्रों ने तय किया कि मेरे अपने निवास पर ही डायलीसिस की व्यवस्था की जाये। इसके लिए कृत्रिम गुर्दा-यंत्र (डायलाइजर) तथा अन्य यंत्र-पुर्जे आदि खरीदने के लिए काफी रुपये की जरूरत थी। अतः वयोवृद्ध सर्वोदय नेता श्री

रविशंकर महाराज, दादा धर्माधिकारी, श्रद्धेय केदारनाथजी तथा स्वामी आनंद (अब स्वर्गीय) ने जनता से सहायता के लिए अपील की। कई धनिक सज्जनों ने मेरे स्वास्थ्य-सहायता-कोष में बड़ी-बड़ी राशि देने की भी इच्छा प्रकट की। परन्तु मेरे मित्रों ने तय किया कि लोगों से एक-एक रुपये या ऐसी ही छोटी रकम का दान लेना उचित होगा। सर्वप्रथम पूज्य विनोबाजी ने एक रुपये का दान देकर इस कोष का श्रीगणेश किया। इसके बाद तो देश के कोने-कोने से दान की धारा बह निकली। जेलों में हमारे जो साथी बंद थे और हैं, उन्होंने भी अपने भोजन का खर्च काटकर एक-एक रुपया मेरे चिकित्सा-कोष में भेजा। इस प्रकार देखते-देखते तीन लाख से भी अधिक रुपये इकट्ठा हो गये। यह रकम पर्याप्त मानी गयी और इसलिए सहायता-कोष को बंदकर देने की घोषणा की गयी। फिर भी रुपये आते रहे। तब हमारे मित्रों ने रुपये लौटाने शुरू किये और कुछ लौटाये भी गये।

प्रधानमंत्री का दान

आपने सुना ही होगा कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने रिलीफ फंड (राहत-कोष) से नब्बे हजार रुपये मेरे स्वास्थ्य-सहायता-कोष के लिए गांधी शांति प्रतिष्ठान के मंत्री श्री राधाकृष्ण के पास गत मई महीने के प्रथम सप्ताह में भेजवायी थी। पहले तो अपने सरल स्वभाव के कारण मैंने उस रकम को स्वीकार करने की सलाह राधा-कृष्णजी को दे दी। परन्तु जब मुझे पता चला कि यह रकम प्रधानमंत्री के राहत-कोष से भेजी गयी है, तो मुझे लगा कि यह सहायता लेना उचित नहीं है, क्योंकि मुझे राहत की आवश्यकता तो थी नहीं। उस समय तक लगभग तीन लाख तीस हजार रुपये देश भर की जनता के दान से जमा हो चुके थे और डायलीसिस-संबंधी प्राय: सभी आवश्यक यंत्र और पुर्जे भी खरीदे जा चुके थे। कोई तात्कालिक आवश्यकता प्रधानमंत्री द्वारा भेजी गयी रकम की नहीं थी। इसलिए मैंने उनके कुल रुपये धन्यवादपूर्वक लौटा दिये। अगर इंदिराजी ने अपने निजी कोष से कोई छोटी राशि भेजी होती तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता। मेरे स्वास्थ्य-सहायता-कोष का संयोजन करनेवालों ने पहले ही यह नीति निर्धारित की थी कि बड़ी-बड़ी रकमें किसी दाता से न ली जायें।

इसलिए भी प्रधानमंत्री द्वारा भेजी गयी रकम वापस करने के अलावा मेरे सामने कोई चारा नहीं था। यह राशि लौटाते हुए मैंने प्रधानमंत्री को एक पत्र भी लिखा था जिसमें मैंने रुपये लौटाने के कारण बताते हुए उनकी सद्भावना के लिए हार्दिक आभार प्रकट किया था। मैंने वह पत्र समाचार-पत्रों में प्रकाशन के लिए भेजा भी था, लेकिन सेंसर ने उसे प्रकाशित होने नहीं दिया। बाद में एक सरकारी प्रवक्ता का बयान अखबारों में निकला जिसमें मुझे जी-भर कर गालियाँ दी गयीं, इसलिए कि मैंने प्रधानमंत्री के राहत-कोष का दान लौटा देने की धृष्टता की थी! (आपकी जानकारी के लिए उस पत्र की प्रतिलिपि, जो मैंने इन्दिराजी को लिखा था, इस चिट्ठी के अंत में दी जा रही है।)

खर्चीली चिकित्सा

इस सिलसिले में आपको यह भी बता देना चाहता हूँ कि मेरे स्वास्थ्य-सहायता-कोष में जो रकम इकट्ठी हुई है, वह छः व्यक्तियों के एक ट्रस्ट को सुपुर्द कर दी गयी है जिसके अध्यक्ष बम्बई के एक प्रतिष्ठित नागरिक श्री शांतिलाल शाह हैं और उसके सदस्यों में सर्वश्री एस० एम० जोशी, मोइनुद्दीन हारिस, प्रभुभाई संघवी, नारायण देसाई तथा मेरे छोटे भाई राजेश्वर प्रसाद हैं। इन सब लोगों की राय से अभी तक एक लाख अस्सी हजार रुपये डायलाइजर मशीन तथा अन्य छोटे-छोटे यंत्र और पुर्जे आदि खरीदने में खर्च हो चुके हैं। बाकी जो राशि बची है, वह मेरी चिकित्सा के माहवार खर्च के लिए रखी गयी है। यह चिकित्सा इतनी खर्चीली है कि इसमें हर महीने लगभग तीन हजार रुपये का खर्च बैठता है। मुझे कभी-कभी लगता है कि क्या मेरा जीवन इतना मूल्यवान है कि इसके लिए जनता मुझ पर इतना खर्च करे! जनता का इतना प्रेम है, इतना स्नेह है मुझ पर, यह मेरे लिए बहुत बड़ी बात है।

आप सबको धन्यवाद !

मैं उन हजारों मित्रों को, जिन्होंने मेरे स्वास्थ्य-कोष में दान दिया, हृदय से धन्यवाद देता हूँ और उनके इस प्रेम के लिए आभार प्रकट

करता हूँ। साथ ही उन अनगिनत मित्रों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने इस कठिन बीमारी के समय, जब मैं मौत से जूझ रहा था, मुझे शुभकामना के संदश भेजे और मेरे आरोग्य की कामना की। आप सब लोगों के प्रेम का ही यह फल है कि मैं आज भी जीवित हूँ।

बंबई में मुझे चैन नहीं था

मैं आपको यह भी बता दूँ कि बंबई के डाक्टरों की अब भी इच्छा नहीं थी कि मैं वहाँ से पटना आऊँ, क्योंकि उनको डर था कि यहाँ मेरी तबीयत कभी ज्यादा खराब हो गयी तो आवश्यक उपचार नहीं हो सकेगा। लेकिन मुझे तो वहाँ चैन नहीं था। मैं आपके बीच लौटना चाहता था इसलिए लौट आया। बंबई से मेरे साथ जसलोक अस्पताल के मुख्य गुर्दा-चिकित्सक डा० एम० के० मणि भी आये थे जिनकी देखरेख में मेरी चिकित्सा वहाँ चलती थी उन्होंने अपने सामने यहाँ तीन डायलीसिस करायी और यहाँ की उसकी व्यवस्था से संतुष्ट होकर वे वापस गये। तब से मेरा डायलीसिस का उपचार सुचारु रूप से यहाँ चल रहा है। मेरे दो साथियों ने डायलीसिस की क्रिया अच्छी तरह सीख ली है। एक तो मेरे सचिव श्री टॉमस अब्राहम हैं, जो केरल के निवासी हैं और वर्षों से मेरी सेवा में लगे हुए हैं। दूसरी हैं सुश्री जानकी पांडे जो उत्तराखंड की रहनेवाली हैं और यहाँ एक अर्से से सर्वोदय का काम कर रही हैं। इन दोनों ने बंबई में रहकर डायलीसिस का प्रशिक्षण प्राप्त किया है और इस वक्त यही दो मरे मेडिकल चिकित्सक हैं, ऐसा आप कह सकते हैं।

बीमार आदमी को देखना भी गुनाह !

तो मैं आपके बीच आ गया हूँ और अब आपके बीच ही रहने की इच्छा है। मुझे अफसोस है कि उस दिन २० जुलाई को जब मैं बंबई से यहाँ आया तो बिहार के विभिन्न इलाकों से जो हजारों लोग मेरे स्वागत के लिए आये थे, वे मुझे देख भी नहीं पाये; उन्हें निराश लौटना पड़ा। इस बात का मुझे बहुत दुख है और इसके लिए यहाँ का शासन

जिम्मेवार है। उसने मेरे आने के पूर्व मेरे स्वागतार्थ आनेवाली जनता को रोकने या तितर-बितर करने के लिए शहर में धारा १४४ लगा दी थी और अहर्निश यह एलान कराया था कि जो कोई मेरे स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर जायेगा वह भारत रक्षा कानून क अंतर्गत गिरफ्तार कर लिया जायेगा और उसे दो-तीन साल तक जेल की सजा भुगतनी पड़ेगी। इस हिटलरी फरमान के बावजूद जो लोग हवाई अड्डे की ओर जाते हुए दीख पड़े उन्हें पुलिस ने खदेड़ दिया या गिरफ्तार कर लिया। यहाँ तक कि उस समय सड़क के किनारे भी किसी को खड़े रहने की इजाजत नहीं थी। उस दिन गिरफ्तार होनेवालों में मेरे चचेरे भाई-बहन और मेरी बहन के दामाद भी थे, जिन्हें पुलिस की हाजत में कई घंटों तक बंद रखा गया। उनका कसूर यही था कि वे मेरे स्वागतार्थ हवाई अड्डे की तरफ जा रहे थ। मैंने यह भी सुना कि अगर कहीं कुछ युवकों ने पुलिस की आज्ञा का उल्लंघन कर आगे बढ़ने की हिम्मत दिखायी या किसी ने 'जयप्रकाश जिन्दाबाद' के नारे लगाये तो उन्हें बुरी तरह पीटा गया। ऐसा तो गुलाम भारत में भी नहीं हुआ था कि एक बीमार आदमी को देखने के लिए लोग जायें और उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाये। पाशविक शक्ति का यह नग्न प्रदर्शन हिटलरशाही को भी लजानेवाला है। परंतु मुझे विश्वास है कि शासन की यह शर्मनाक कार्रवाई संघर्षशील जनता और जुझारू युवकों के इरादों को और भी पक्का करेगी, तथा शासन क प्रति उनके विरोध की भावनाओं को और तीव्र बनायेगी। यह घटना हमें एहसास कराती है कि आजाद भारत में भी आज जनता गुलाम है, युवक गुलाम हैं और इस नयी गुलामी से मुक्त होने के लिए उन्हें नयी आहुतियाँ देनी होंगी, नये बलिदान करने होंगे।

सारा बिहार जेल बन गया है

यों तो सारा देश आज तानाशाही के शिकंजे में जकड़ा हुआ है। लेकिन पटना आकर मैं महसूस कर रहा हूँ कि सारा बिहार जेल बन गया है। बिहार में पुलिस द्वारा धड़-पकड़ तो पहले से ही जारी थी पर मेरे आने के बाद उसमें और तेजी आ गयी है। मुझे बताया गया है कि पिछले दो वर्षों के दौरान जिस किसी व्यक्ति ने कभी आंदोलन में भाग

लिया था, उसको पकड़ कर बंद कर देने का निश्चय सरकार ने किया है। शायद उसे भय है कि मेरी उपस्थिति से फिर कहीं उनकी भावनाओं का तार बज न उठे। जनता से मुझको और मुझसे जनता को अलग रखने की कोशिश गत २० जुलाई से ही चल रही है, जिस दिन मैं यहाँ आया। तब से ही मेरे निवास पर पुलिस की कड़ी निगरानी है। जो लोग मुझसे मिलने आते हैं, उन्हें पुलिस के लोग रोककर पूछते हैं और उनका नाम-पता नोट करते हैं। इसलिए लोग यहाँ आने से भी डरते हैं। अधिकांश लोग तो मुझे सिर्फ देखने के लिए या स्वास्थ्य पूछने के लिए आते हैं। लेकिन पुलिस के भय से वे आ नहीं पाते, मुझे देख नहीं पाते, क्योंकि वे समझते हैं कि पुलिस उन्हें बाद में परेशान करेगी। बंबई में तो ऐसी स्थिति नहीं थी। पता नहीं यहाँ का शासन क्यों इतना बुजदिल है, क्यों इतना भयभीत है। मैं बीमार हूँ और अपने घर आया हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि सामान्य स्थिति शीघ्र लौटे। परन्तु शासन की नीतियों के कारण स्थिति सामान्य नहीं हो पाती।

उथल-पुथल का वर्ष

पिछला वर्ष देश के जीवन में और हमारे आपके जीवन में भारी उथल-पुथल का वर्ष रहा है। २५ जून, '७५ तक भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र था। २६जून, '७५ से वह एक अधिनायक-तंत्र में परिवर्तित कर दिया गया। अभी लोकतंत्र का संपूर्ण वध तो नहीं हुआ है, लेकिन वह सिसक रहा है, दम तोड़ रहा है। समाचार-पत्रों की स्वाधीनता छीन ली गयी है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता कुण्ठित कर दी गयी है। एक झूठी इमरजेन्सी के नाम पर जनता के मौलिक अधिकार कुचल दिये गये हैं और नागरिक स्वतंत्रताएँ समाप्त कर दी गयी हैं। वर्तमान लोकसभा का कार्यकाल पिछले मार्च में ही समाप्त हो चुका, परन्तु इमरजेन्सी के बहाने उसका कार्यकाल बढ़ा कर चुनाव टाल दिये गये हैं। अभी तो चुनाव सिर्फ एक वर्ष के लिए टाले गये हैं, परन्तु इमरजेन्सी को कायम रखकर उन्हें वर्षों टाला जा सकता है। २५ जून, '७५ तक जनता इस देश की मालिक थी, आप इस देश के मालिक थे, आपके वोट से इस मुल्क की किस्मत बनती-बिगड़ती थी, परन्तु २६ जून, '७५ से आपका यह अधिकार छिन गया है और लोकशाही के स्थान पर एक व्यक्ति की

तानाशाही कायम हो गयी है। अब संविधान में मनमाने ढंग से संशोधन कर इस तानाशाही को स्थायी बनाने की कोशिश की जा रही है। जो लोग इस तानाशाही के खिलाफ आवाज उठा सकते थे और उठा रहे थे, उनकी जबान पर ताला लगा दिया गया है। हजारों की संख्या में ऐसे लोग मीसा, डी० आई० आर० आदि कानूनों के अन्तर्गत जेलों में बंद हैं। उनका अपराध यही है कि उन्होंने एक भ्रष्ट व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी थी और अब इस भ्रष्ट तानाशाही के सामने सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हैं।

आपको लाख-लाख बधाई

मेरी तथा अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के बाद बिहार में और देश भर में जो कुछ हुआ, जनता ने और युवकों-छात्रों ने सरकार के इस अधिनायकवादी कदम के विरुद्ध जो प्रतिक्रिया जाहिर की, और जिस ढंग से उन्होंने पुलिस की आतंकपूर्ण एवं बर्बरतापूर्ण कार्रवाइयों का सामना किया, यह सारी बातें भारतीय इतिहास की अमिट कहानी बन चुकी हैं। मेरी रिहाई के बाद देश के विभिन्न भागों से जो लोग मुझसे मिलने आये, उन्होंने बताया कि २६ जून '७५ को इमरजेन्सी की घोषणा के विरोध में जनता ने, युवकों और छात्रों ने काफी कुछ किया। हमारी गिरफ्तारी की खबर जब भी जहाँ पहुँची, वहाँ हड़तालें हुईं, बन्द का आयोजन हुआ, जुलूस निकले, प्रदर्शन हुए, और सरकार ने अपने शस्त्र-बल से जनता के विरोध को कुचलने का प्रयत्न किया। ये सब घटनाएँ अखबारों पर सेंसरशिप के कारण प्रकाश में आयी नहीं। इसलिए खुद भारत के लोगों को ही पता नहीं है कि कहाँ क्या हुआ। जब कभी समय पलटेगा और इस देश के लोकतंत्र का वास्तविक इतिहास लिखा जायगा, तब ही दुनिया को मौजूदा शासन की काली करतूतों का पता चलेगा और वह यह जान सकेगी कि उस देश के लोगों ने शासकीय अत्याचारों का मुकाबला किस ढंग से किया। मैं आप सबको, बिहार की और भारत की जनता को, तथा अपने बहादुर युवकों एवं छात्रों को बधाई देता हूँ जिन्होंने परिस्थिति का डटकर सामना किया और आज भी कर रहे हैं। मुझे खासकर इस बात से खुशी है कि उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में भी आंदोलनकारी छात्रों और युवकों ने अपने दिमाग पर

काबू रखा और शांतिमय आंदोलन के अनुशासन का पालन किया। जहाँ तक मुझे जानकारी है, कहीं कोई हिंसा या तोड़फोड़ की घटनाएँ उनकी तरफ से नहीं हुईं। अपवाद-स्वरूप, जहाँ-तहाँ छिटपुट वारदातें हुई होंगी। लेकिन आमतौर पर आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने शान्तिमय प्रतिकार के ही तरीके अपनाये। इन्दिराजी के कुछ समर्थक कहते हैं कि मेरी तथा अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के विरुद्ध जनता ने कोई जोरदार प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की, यानी खून की नदी नहीं बही और व्यापक पैमाने पर तोड़-फोड़ की घटनाएँ नहीं हुईं जिसकी कि उन्हें अपेक्षा थी। यह बात वे हमारे आंदोलन का उपहास करने या उसकी पराजय बताने के लिए कहते हैं। परन्तु मैं इसे ही आंदोलन की सबसे बड़ी विजय मानता हूँ। मुझे गर्व है कि हमारे आंदोलन के छात्रों और युवकों ने सयम से काम लिया। इस बात से यह भी सिद्ध हो जाता है कि आंदोलनकारियों के पास हिंसा और तोड़-फोड़ मचाने की कोई योजना नहीं थी, हालाँकि, इंदिरा जी के प्रचारक बार-बार इस बात को दुहराते हैं कि हमारी योजना व्यापक पैमाने पर हिंसा और तोड़-फोड़ करने की थी, जिसको रोकने के लिए उन्होंने इमरजेन्सी लगायी। उनका यह झूठा प्रचार जारी है, क्योंकि वे विश्वास करते हैं कि बार-बार दुहराने पर झूठ भी सच हो जाता है।

इन्दिराजी का आरोप और बिहार-आन्दोलन

श्रीमती इदिरा गांधी की तरफ से अब भी यह प्रचार चल रहा है कि जयप्रकाश के आंदोलन से देश की एकता को, लोकतंत्र को, भारी खतरा पैदा हो गया था, इसलिए इमरजेन्सी लागू की गयी। लेकिन सचाई यह नहीं है। आपको याद होगा कि बिहार में जो आंदोलन हुआ वह वहाँ के छात्रों और युवकों ने शुरू किया था। मैं तो इसमें बाद में शामिल हुआ और छात्र-नेताओं के बार-बार आग्रह करने पर उसकी बागडोर हाथ में ली। यह आंदोलन जिन माँगों को लेकर शुरू हुआ था, उनमें मुख्य थीं: भ्रष्टाचार दूर हो, महँगाई खत्म हो, बेरोजगारी की समस्या हल हो और शिक्षा की व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो।

मैं नहीं चाहता था कि छात्रों और युवकों के आंदोलन का नेतृत्व मैं अपने हाथ में लूँ। लेकिन जब १८ मार्च, '७४ को बिहार विधानसभा के

सामने सत्याग्रही छात्रों पर पुलिस ने डंडे बरसाये, और दूसरी तरफ कुछ पेशेवर उपद्रवी तत्वों ने पटना शहर में जहाँ-तहाँ आगजनी की कार्रवाई की तो मेरा माथा ठनका और मैंने अपने एक वक्तव्य में उन उपद्रवी तत्वों की निन्दा करते हुए बिहार शासन को सावधान भी किया था। साथ ही १८ मार्च की घटना से जो तनाव का वातावरण पैदा हुआ था, उसे शान्ति में परिवर्तित करने के लिए मैंने ८ अप्रैल, '७४ को वह ऐतिहासिक मौन जुलूस निकला जिसका अद्भुत प्रभाव जनमानस और युवा-मानस पर पड़ा था। यह मौन जुलूस छात्रों के आंदोलन को हिंसक तत्वों से बचाने और उसे शांति के तत्वों से जोड़ने की दिशा में एक प्रयास था। परंतु बिहार के शासन ने अपना रवैया नहीं बदला। उसने छात्रों के आंदोलन को कुचलने का फैसला कर लिया था। अगर सरकार बिहार छात्र संघर्ष समिति के नेताओं को बुलाती और उनसे सहानुभूतिपूर्वक बातचीत करती तो यह आंदोलन उग्र रूप धारण नहीं करता। बातचीत करने के बदले सरकार ने आंदोलन को कुचलने का फैसला किया और घोर दमन करना शुरू किया। इससे आंदोलन दबने के बदले उभरता गया। जनता की भरपूर सहानुभूति भी उसे मिली और छात्रों-युवकों के आंदोलन ने एक बड़े जनान्दोलन का रूप ले लिया। सरकार की क्रूर दमनकारी नीतियों के फलस्वरूप आंदोलन का रूप अधिकाधिक सरकार-विरोधी होता गया। फिर जब छात्रों ने देखा कि बिहार विधानसभा सरकार की दमन-नीति की निंदा करने के बदले उसका समर्थन कर रही है, तब उन्होंने विधानसभा के विघटन की भी माँग उठायी और बिहार के आसमान में यह आवाज गूँज उठी : 'तुम प्रतिनिधि नहीं रहे हमारे, कुर्सी-गद्दी छोड़ दो।' जहाँ तक मेरा संबंध है, मैंने आरम्भ में छात्रों को समझाने की कोशिश की थी कि वे गुजरात की नकल न करें। आपकी जानकारी के लिए यह बता दूँ कि जब १९ मार्च १९७४ को बिहार छात्र संघर्ष समिति की संचालन समिति के अधिकांश नेता मुझसे मिलने आये थे तो मैंने उनसे स्पष्ट रूप से यह कहा था कि सरकार के इस्तीफे की और विधानसभा के विघटन की माँग करना अनुचित होगा, क्योंकि उस समय तक मुझे आशा थी कि सरकारी नेताओं की सुबुद्धि जागेगी और छात्रों की माँगों के प्रति वे सहानुभूति का रूप अख्तियार करेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उलटे उन्होंने घोर

दमन की नीति अपनायी और शांतिपूर्ण सत्याग्रही छात्रों-युवकों पर लाठी-गोली से प्रहार करना शुरू किया, और तब मैंने छात्रों के अनुरोध पर उनके आंदोलन का नेतृत्व करना स्वीकार किया।

उस दिन मेरी लाश निकल जाती

बिहार सरकार की दमनात्मक कार्रवाई से सरकार के इस्तीफे को और विधानसभा के विघटन की माँगों को बल मिला, और तब मैंने भी इन माँगों का समर्थन करने का फैसला किया। फिर तो इन माँगों के पीछे जनता का समर्थन व्यक्त करने के लिए व्यापक पैमाने पर हस्ताक्षर-अभियान हुआ, बड़े-बड़े जन-प्रदर्शन और जन-सभाएं हुईं और सारा बिहार लगातार तीन दिन (३-४-५ अक्तूबर को) बंद रहा। आपको याद होगा, ५ जून, '७४ का वह विशाल जन-प्रदर्शन जिसमें बिहार के कोने-कोने से आये हुए लाखों लोग शामिल हुए थे। राजधानी में इकट्ठा होकर उन्होंने सरकार के इस्तीफे तथा बिहार विधानसभा के विघटन की अपनी माँग दुहरायी और इस माँग के पक्ष में बिहार के हजारों गाँवों के कम-से-कम पचास लाख लोगों के हस्ताक्षर बिहार के राज्यपाल को समर्पित किये। परंतु सरकार के कानों पर जूँ नहीं रेंगी। अंत में ४ नवम्बर, '७४ को मेरे नेतृत्व में वह ऐतिहासिक कूच पटना में हुआ जिसको रोकने और विफल करने के लिए केन्द्रीय रक्षा पुलिस (सी० आर० पी०) ने अंधाधुन्ध अश्रुगैस के गोले और लाठियाँ बरसायीं, और सैकड़ों लोगों को घायल कर दिया। मैंने भी उनकी लाठी की मार खायी। अगर श्री नानाजी देशमुख और श्री अली हैदर तथा अन्य लोगों ने (जिनमें मेरी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए नियुक्त बिहार पुलिस के सिपाही भी थे) मुझे बचाने के लिए केन्द्रीय रक्षा पुलिस की लाठी का वार अपने ऊपर झेल नहीं लिया होता तो उसी दिन मेरी लाश निकल जाती या मैं बुरी तरह घायल हो जाता। यह सारा हुआ केन्द्रीय सरकार के इशारे पर, क्योंकि बिहार की सरकार में खुद ऐसा करने की हिम्मत नहीं थी।

लुधियाना, कुरुक्षेत्र, कलकत्ता

बिहार के अलावा अन्य तीन प्रदेशों में मेरे साथ ऐसा ही सलूक

किया गया। आपने सुना होगा कि २९ अक्तूबर, '७४ को मैं जब लुधियाना (पंजाब) गया था, तो वहाँ लाखों की भीड़ मेरा संदेश सुनने के लिए इकट्ठी हुई थी। लुधियाना स्टेशन पर उतरते समय वहाँ इकट्ठी हुई भीड़ में किसी ने पीछे से आकर मुझे दबोचने की कोशिश की, जिससे मेरी एक पसली चनक गयी और काफी दिनों तक उसमें दर्द रहा। फिर जब उन्हीं दिनों दिल्ली से निकलकर मैं कुरूक्षेत्र (हरियाणा) में एक सभा को संबोधित करने के लिए जा रहा था, तो रास्ते में पानीपत के पास कांग्रेस के लठैतों ने मेरी कार को रोककर उस पर डण्डे बरसाये। इसी प्रकार २ अप्रैल '७५ को कलकत्ता में युनिवर्सिटी हाल के सामने जहाँ मेरे लिए एक सभा आयोजित की गयी थी, कांग्रेस के गुण्डों ने मेरी कार को घेर लिया और उस पर डण्डों से अनगिनत प्रहार किये। सभा के आयोजक श्री क्षितीशराय चौधरी और श्री समर गुहा एम० पी० तक को उन्होंने अपने प्रहारों से जख्मी कर दिया था। ये घटनाएँ केन्द्रीय शासन के इशारे पर और इंदिराजी की सहमति से हुईं, इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं है। आखिर मैंने क्या कसूर किया था कि मेरे साथ ऐसा सलूक किया गया? देश की आजादी की लड़ाई मैंने भी लड़ी थी और उस लड़ाई में मैं किसी से पीछे नहीं था। तो क्या आजाद भारत में मुझे इतना भी हक नहीं है कि मैं देश भर में घूमकर सभाएँ करूँ और जनता को, युवकों को एवं छात्रों को, अपने विचार समझाऊँ? हर लोकतांत्रिक देश में नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है। लोकतांत्रिक भारत में यह गुनाह कैसे हो सकता है? लेकिन मेरे लिए यह गुनाह बन गया और शासकों ने मेरे ऊपर हमले करने और कराने शुरू किये।

कारवाँ बढ़ता गया

इन सब घटनाओं के बावजूद संपूर्ण क्रांति का कारवाँ बढ़ता गया और आंदोलन की लहर देश भर में फैलती गयी। इस सिलसिले में आपको स्मरण होगा, ६ मार्च, '७५ को दिल्ली में वह ऐतिहासिक जन-प्रदर्शन मेरे नेतृत्व में हुआ जिसमें देश भर से आये हुए कई लाख लोगों ने भाग लिया था। उस अवसर पर मैंने जनता की तरफ से एक माँग पत्र भी लोकसभा तथा राज्य सभा के अध्यक्षों को समर्पित किया था। वह माँग-पत्र इस चिट्ठी के अंत में दिया जा रहा है। उसमें

जैसा कि आप देखेंगे, हमने माँग की थी कि जनता केम हत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक अधिकारों और लोकतांत्रिक एवं नागरिक-स्वतंत्रताओं की सुरक्षा हो, स्वतंत्र एवं सही चुनाव के लिए चुनाव-कानून में संशोधन किये जायें, शिक्षा-व्यवस्था में सुधार हो तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए ठोस कदम उठाये जायें। इस माँगपत्र के आइने में हमारे आंदोलन का चेहरा कोई साफ-साफ देख सकता है। लेकिन उस पर सरकार ने विचार तक नहीं किया। फिर ५ जून,' ७५ को कलकत्ते में ही एक अभूतपूर्व जन-प्रदर्शन का आयोजन हुआ जिसमें भी लाखों व्यक्ति शामिल हुए थे। आंदोलन को तरफ से ये सारे बड़े-बड़े आयोजन बिल्कुल शांतिपूर्वक हुए। कहीं कोई हिंसा आंदोलनकारियों की तरफ से नहीं हुई। अगर हिंसा हुई तो इन्दिराजी के शासन की तरफ से हुई, उनके साथियों की तरफ से हुई और हमारे आंदोलन के साथियों ने उसे शांतिपूर्वक बर्दास्त किया। आपको याद होगा, पटना में ५ जून, '७४ को हमारे विराट जुलुस पर कुख्यात इन्दिरा ब्रिगेड के लोगों ने गोली तक चलायी थी। लेकिन जुलूस को तरफ से किसी ने एक कंकड़ भी नहीं फेंका था। फिर भी हिंसा का आरोप इन्दिराजी हमारे आंदोलन पर लगाती हैं। 'उल्टे चोर कोतवाल को डाँटे' वाली कहावत यहाँ चरितार्थ हुई है।

इमरजेंसी क्यों ?

सरकार ने इमरजसी का औचित्य सिद्ध करने के लिए इमरजेंसी क्यों ?' नाम को एक पुस्तिका प्रकाशित की है। 'उसमें तथ्यों को तोड़-मरोड़कर यह बताने की कोशिश की गयी है कि इमरजेंसी के लिए जिम्मेवार हमारा आंदोलन है। वास्तविकता यह है कि हमारे आंदोलन से बिहार में और सारे देश में जो जन-उभार हुआ, उसे देखकर सत्ता-वाले भयभीत हो गये। अपने आंदोलन का संदेश—संपूर्ण क्रांति का संदेश दूसरे प्रदेशों के लोगों को सुनाने के लिए मैंने पूरे भारत की यात्राएँ की थीं। इन यात्राओं के दौरान मुझे जो अनुभव हुए, वे अकथनीय हैं और जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, जहाँ भी मैं गया, अपार जनता की भीड़ उमड़कर आयी। हर्षध्वनियों के साथ लोगों ने मेरा संदेश सुना और सब जगह किसी-न-किसी नाम से संघर्ष समितियों का निर्माण हुआ। इस

प्रकार एक देशव्यापी आंदोलन, किसी तात्कालिक या पक्षीय हेतु की सिद्धि के लिए नहीं, बल्कि समाज में एक सर्वाङ्गीण परिवर्तन के लिए, उभरने लगा था। सत्तावालों ने इसको अपने लिए एक चुनौती मान लिया और हर प्रकार से उसे दबा देने का प्रयत्न किया।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय

इसी बीच इन्दिराजी के चुनाव के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय का वह ऐतिहासिक निर्णय हुआ जिसके अनुसार उनपर चुनाव में भ्रष्टाचार के दो आरोप सिद्ध हुए और उन्हें लोकसभा की सदस्यता से वंचित कर दिया गया। इन दो आरोपों में एक तो यह था कि इन्दिराजी ने श्री यशपाल कपूर जैसे सरकारी सेवक की सेवाओं का उपयोग अपने व्यक्तिगत चुनाव के काम के लिये किया जो लोक-प्रतिनिधित्व अधिनियम के अनुसार एक भ्रष्ट आचरण था। दूसरा आरोप यह था कि जब इन्दिराजी अपने रायबरेली चुनाव-क्षेत्र में भाषण देने गयीं तो उत्तर प्रदेश की सरकार ने सरकारी पैसे से उनकी चुनाव-सभा का प्रबंध किया था और उनके लिए मंच बनवाया था। लोक-प्रतिनिधित्व-कानून के अनुसार यह भी एक भ्रष्ट आचरण था। इन्दिराजी के विरुद्ध और भी अनेक आरोप लगाये गये थे, परंतु उनमें से ये दो सिद्ध हुये और इसी पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उनके चुनाव को रद्द कर दिया। इस निर्णय के बाद इन्दिराजी को प्रधानमंत्री के पद से स्वतः हट जाना चाहिए था। अगर ऐसा वे करतीं तो जनता की नजर में उनकी इज्जत बढ़ जाती। परंतु इसके बदले उन्होंने किसी भी कीमत पर प्रधानमंत्री के पद पर बने रहने का निश्चय किया।

इंदिराजी से इस्तीफे की माँग

हमारे आंदोलन का एक मुख्य उद्देश्य था भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करना। इसलिए जब एक उच्च न्यायालय ने इन्दिराजी को भ्रष्ट घोषित किया तो हमारे लिये चुप रहना असंभव हो गया और तब हमने भी एक बयान देकर यह माँग की कि इन्दिराजी को प्रधानमंत्री पद से हट जाना चाहिए। यह ठीक है कि इन्दिराजी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के

फैसले के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर कर उस फैसले से एक कानूनी बचाव प्राप्त कर लिया था। परंतु हमारा कहना था कि जिस व्यक्ति पर भ्रष्टाचार का कलंक लग चुका हो, वह कलंकित मूर्ति प्रधानमंत्री की गद्दी पर बैठे यह उसके पद की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। इसलिए हमने यह माँग की कि जब तक सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय नहीं हो जाता और वह इन्दिराजी को भ्रष्टाचार के आरोपों से मुक्त नहीं कर देता, तबतक प्रधानमंत्री की गद्दी पर उन्हें नहीं बैठना चाहिए। (आज भी मेरी यह राय कायम है कि इन्दिराजी को उस समय त्याग-पत्र देकर हट जाना चाहिए था) लेकिन त्याग-पत्र देना तो दूर, उन्होंने और उनके समर्थकों ने, भाड़े पर लोगों को बुलाकर उनसे यह नारा लगवाना शुरू किया कि वे प्रधानमंत्री पद पर बनी रहें। ऐसी परिस्थिति में आंदोलन-समर्थक विपक्षा दलों ने २९ जून, '७५ से ५ जुलाई, '७५ तक देशभर में 'लोक-शिक्षण सप्ताह' मनाने का निश्चय किया। इस सप्ताह के दौरान सारे देश में जिला-स्तर तक सभाएँ और प्रदर्शन करने का कार्यक्रम था। उद्देश्य इतना ही था कि जनता को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय का महत्व समझाया जाये और इंदिराजी के (सुप्रीम कोर्ट के फैसला तक) इस्तीफे के पक्ष में जनमत तैयार किया जाये। तदनुसार विरोधी पक्षों के नेता विभिन्न राज्यों में जाकर सभाएँ करने वाले थे। दिल्ली में भी सभाएँ करने की योजना थी। इन्दिराजी के निवास के सामने भी शांतिपूर्ण प्रदर्शन करने की योजना थी। इसके लिए सत्याग्रही भर्ती किये जाते और वे प्रदर्शन में भाग लेकर गिरफ्तार होते। इससे अधिक कुछ नहीं होनेवाला था। ऐसा तो स्वतंत्र भारत में हमेशा होता रहा है। इसमें कोई नयी बात तो नहीं थी। हाँ, एक नयी बात यह थी की इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद चारों ओर से यह आवाज उठने लगी थी कि इन्दिराजी पर भ्रष्टाचार के आरोप सिद्ध हुए हैं, इसलिए वे इस्तीफा देकर हट जायें। स्वयं सुप्रीम कोर्ट ने शर्त के साथ इन्दिराजी को अपील की इजाजत (कन्डीशनल स्टे) दी थी। विरोधी पक्ष भी एकजुट हो गये थे, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। गुजरात में जनता मोर्चे की विजय का उदाहरण सामने था। यह सब देखकर इन्दिराजी तथा उनके मित्रों को भय हुआ कि अगर लोकतंत्र कायम रहा तो अगले चुनाव में जनता उन्हें तथा उनके दल को निकाल

बाहर करेगी। इसलिए उन्होंने लोक तन्त्र को ही समाप्त करने का निश्चय किया। तदनुसार २६ जून. '७५ को इन्दिराजी की सलाह पर राष्ट्रपति ने इमरजेंसी की घोषणा कर दी और मुझे तथा आंदोलन-समर्थक विपक्षी दलों के नेताओं एवं हजारों कार्यकर्ताओं, सामाजिक सेवकों तथा बड़ी संख्या में छात्रों-युवकों को गिरफ्तार कर जेलों में बंद कर दिया गया। इस सिलसिले में पूरे देश में डेढ़-दो लाख व्यक्ति गिरफ्तार किये गये और उनमें से हजारों आज भी जेलों में बंद हैं।

जब भ्रष्टाचार शिष्टाचार बन गये

कुछ लोग यह कहते है कि जब सर्वोच्च न्यायालय में इंदिराजी ने अपील दायर कर दी थी तो उस पर निर्णय होने के पूर्व उनसे इस्तीफे की माँग करना अनुचित था, क्योंकि आखिर सर्वोच्च न्यायालय ने इंदिराजी को भ्रष्टाचार के आरोपो से मुक्त ही कर दिया। सच तो यह है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इंदिराजी की अपील पर निर्णय तब दिया, जब वे संसद से (जिसमें उनके दल का भारी बहुमत है) लोकप्रतिनिधित्व अधिनियम में एक ऐसा संशोधन पास कराने में सफल हो गयीं जिसके प्रभाव से उन पर लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोप शिष्टाचार में बदल गये। (यह भी भारत के इतिहास मे एक अभूतपूर्व घटना है !) अगर यह संशोधन पास नहीं हुआ होता और सर्वोच्च न्यायालय की स्वतंत्रता कायम रहती तो बहुत सभव है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फैसला कायम रहता और इंदिराजी को हटना पड़ता। इन्दिराजी को अपने दल पर भी भरोसा नही था। उनके दल के भी बहुत सारे संसद-सदस्य यह चाहते थे कि वह प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा देकर लोक-तांत्रिक परम्परा की रक्षा करें और उनके स्थान पर कांग्रेस दल का कोई दूसरा नेता प्रधानमंत्री बने। परंतु वह इसके लिए तैयार नहीं हुईं, क्योंकि उन्हें भय था कि एक बार हटने पर वह फिर प्रधानमंत्री नही बन पायेंगी। इसलिए इमरजेंसी लगाकर उन्होंने विपक्षी दलों के नेताओं के साथ-साथ कांग्रेस-दल के नेता सर्वश्री चन्द्रशेखर एम० पी०, रामधन और आगे चलकर मोहन धारिया को भी पकड़कर जेल में बंद कर दिया। इस प्रकार तथा अन्य प्रकार से अपने दल के सांसदों को भयभीत

कर उन्होंने उनसे मनमाने संशोधन पास करा लिये। इमरजेंसी उनकी व्यक्तिगत सत्ता की हिफाजत के लिए अनिवार्य बन गयी थी।

हकीकत यह है

इंदिराजी बार-बार यह मिथ्या आरोप लगाती हैं कि मेरे आंदोलन से देश में हिंसा का वातावरण बना। यह आरोप, पूर्णतः गलत और निराधार है। हकीकत यह है कि आरम्भ में कुछ राजनीतिक तत्वों ने, जो आज इन्दिराजी के सबसे बड़े समर्थक बने हुए हैं, बिहार के आंदोलन को हिंसक मोड़ देने की कोशिश की थी। लेकिन वे सफल नहीं हुए। कई उत्तेजनकारी घटनाओं के बावजूद आंदोलन का शांतिपूर्ण रूप अब तक कायम रहा। आज भले ही कांग्रेसी लोग मुझे गालियाँ देते हैं, लेकिन उस समय एक जिम्मेवार कांग्रेस-नेता ने यह कबूल किया था कि अगर जयप्रकाश इस आंदोलन के दौरान पूरे प्रदेश में सामूहिक सत्याग्रह, धरना और उपवास के कार्यक्रम चले। सामूहिक सत्याग्रह को तोड़ने के लिए पुलिस ने दर्जनों जगह लाठी-गोली चलाकर सैकडों सत्याग्रहियों को घायल किया और बिहार में कम-से-कम डेढ़ सौ व्यक्ति पुलिस की गोली खाकर शहीद हुए। लेकिन जहाँ तक मुझे जानकारी है आंदोलनकारियों की तरफ से कहीं कोई हिंसक कारवाई नहीं हुई, क्योंकि हमारे आंदोलन का नारा था। "हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा।" और मुझे इस बात का गौरव है कि हमारे छात्रों और युवकों ने इस नारे को अपने आचरण से सिद्ध कर दिखाया। हिंसा की केवल एक घटना छपरा जिले में हुई थी, जहाँ एक पुलिस सिपाही जनता के आक्रोश का शिकार हो गया। मैंने इस घटना की सार्वजनिक रूप से निंदा की थी और उस मृत सिपाही की विधवा को पाँच हजार रुपये की सहायता भी भेजी थी। फिर जब बिहार विधानसभा के सदस्यों से इस्तीफा दिलाने के लिये सत्याग्रह का आयोजन किया गया, तो मैं इस बात पर बराबर बल देता रहा कि शांतिपूर्ण सत्याग्रह की मर्यादा भंग न हो। अगर कहीं कुछ युवकों ने इस मर्यादा का अतिक्रमण किया तो मैंने और मेरे साथियों ने उसकी तत्काल निन्दा की और स्थिति को

नियंत्रण से बाहर नहीं जाने दिया। आपको शायद याद होगा कि एक बार जब बिहार विधानसभा के फाटक पर सत्याग्रह के क्रम में एक विधायक का कुर्ता फट गया, तो मैंने इस घटना के लिये खेद प्रकट करते हुए विधानसभा के अध्यक्ष श्री हरिनाथ मिश्र को पत्र लिखकर पूरे सदन से क्षमा-याचना की थी और मेरा वह पत्र सदन में पढ़कर सुनाया भी गया था। फिर भी अगर आज कोई कहे कि इस आंदोलन से हिंसा का वातावरण बना, तो यह सरासर मिथ्या और मनगढ़न्त आरोप है। वास्तविकता यह है कि हमारे आंदोलन से युवकों और छात्रों के आक्रोश को एक शांतिमय दिशा मिली, अन्यथा उनका असंतोष भड़ककर भयानक विस्फोट का रूप ले सकता था।

इमरजेंसी की ढाल, पुलिस और सेना

इन्दिराजी का और उनके शासन का एक मुख्य आरोप यह है कि मैंने पुलिस और सेना को विद्रोह करने के लिए उकसाने का प्रयास किया था। यह भी एक मिथ्या आरोप है। मैंने पुलिस या सेना के जवानों से यह कभी नहीं कहा कि वे मौजूदा शासन के खिलाफ विद्रोह कर दें और हमारे आंदोलन में शामिल हो जायें। इमरजेंसी के पहले अपने सार्वजनिक भाषणों और वक्तव्यों में मैंने हमेशा इसी बात पर बल दिया था कि पुलिस के जवानों को गैरकानूनी आदेशों का पालन नहीं करना चाहिए। यह पुलिस ऐक्ट मे ही लिखा हुआ है कि अगर पुलिस का कोई आदमी गैरकानूनी आदेश का पालन करता है, तो वह सजा का भागी हो सकता है। अपने भाषणों में मैंने पुलिस ऐक्ट की ही बात दुहराई थी। इमरजेंसी के दौरान और उसके पहले भी पुलिस के लोगों ने ऊपर के अधिकारियों के आदेश पर शांतिपूर्ण सत्याग्रही जनता और युवकों पर जिस बेरहमी से प्रहार किये हैं, उसे देखकर कोई भी कहेगा कि पुलिस को ऐसे आदेशों का पालन नहीं करना चाहिए और मैं मानता हूँ कि यह कहना अपराध नहीं है। जहाँ तक सेना का संबंध है, मैंने यही बार-बार कहा है कि सेना को देश के प्रति, राष्ट्रीय झंडे के प्रति और संविधान के प्रति वफादार रहना चाहिए। अगर किसी दल की सरकार अपने दलीय हितों को आगे बढ़ाने या लोकतंत्र को दबाकर अपने दल

की तानाशाही कायम करने के लिए सेना का इस्तेमाल करना चाहे, तो सेना का कर्तव्य है कि वह लोकतंत्र की रक्षा करे, क्योंकि हमारा संविधान लोकतांत्रिक है। यह कहने की जरूरत मुझे तब पड़ी, जब मैंने अनुभव किया कि इन्दिराजी सेना का इस्तेमाल लोकतन्त्र को कुचलने के लिए कर सकती हैं। सीमा सुरक्षा सेना (बी० एस० एफ०) का इस्तेमाल तो उन्होंने हमारे आंदोलन को दबाने के लिए किया ही है। इसलिए मैंने सेना से और पुलिस से जो कुछ कहा है, वह विद्रोह भड़काने के लिये नहीं, बल्कि एक विद्रोही परिस्थिति से देश को बचाने के लिए कहा है। अगर यह कहना गुनाह है तो मैं उसे कबूल करता हूँ। इन्दिराजी ने हमारे आंदोलन पर दर्जनों आरोप लगाये है और वे सारे आरोप निराधार और मिथ्या हैं, यह मैं पूरी जिम्मेवारी के साथ कह रहा हूँ। मुझे इस बात की खुशी है कि उनके लाख प्रयास के बावजूद बिहार की और भारत की जनता यही मानती है कि अपनी व्यक्तिगत तानाशाही का औचित्य सिद्ध करने के लिए इन्दिराजी ने मिथ्या आरोप लगाये हैं, और मात्र अपने पद और सत्ता की रक्षा के लिए उन्होंने इमरजेंसी लगा रखी है और समाचार-पत्रों का मुँह बन्द कर दिया है।

फासिस्ट कौन है ?

सरकार द्वारा प्रकाशित 'इमरजेंसी क्यों?' नाम की पुस्तिका में मेरे विरुद्ध अनेक झूठी और मनगढ़न्त बात कही गयी हैं। उनमें एक यह है कि हमारे आंदोलन में आनन्दमार्गी भी शामिल हैं। मैंने बार-बार इस बात का खण्डन किया है। फिर भी इन्दिराजी के प्रचारक आनंदमार्ग को हमारे आंदोलन से जोड़ने का कुत्सित प्रयास करते ही रहते हैं। आनन्दमार्ग न तो कभी हमारे आंदोलन में था और न आज है। आनन्दमार्ग के सिद्धांत और व्यवहार को मैंने बराबर अस्वीकार किया है और आज भी करता हूँ।

जहाँ तक आर० एस० एस० की बात है, यह ठीक है कि वर्षों पूर्व मैं आर.एस एस. का विरोधी था, और उसकी कठोर शब्दों में आलोचना किया

❀ राष्ट्रीय स्वयसेवक संघ

करता था। परन्तु दुनिया में कोई चीज अपरिवर्तनशील (स्टेटिक) नहीं है। संगठन के भी रूप और सिद्धांत बदलते हैं और मैं मानता हूँ कि अनुभवों से गुजर कर आर० एस० एस० भी बदला है और बदल रहा है। यह संगठन पहले जो भी रहा हो, आज बिल्कुल वही नहीं है, जो पहले था। आज उसके स्वयंसेवक अपनी प्रार्थना में जिन प्रातः-स्मरणीय महापुरुषों के नाम लेते हैं, उनमें महात्मा गांधी भी हैं। आर० एस० एस० और जनसंघ पर सम्प्रदायवादी होने का आरोप अक्सर लगाया जाता है। अपने सपूर्ण क्रांति के आन्दोलन में उन्हें शामिल कर मैंने उनको 'डी-कम्युनलाइज' करने, यानी उनको असाम्प्रदायिक बनाने की कोशिश की है। इन दोनों जमातों के युवकों ने इस आन्दोलन में मुस्लिम छात्रों और युवकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया है और एक साथ काम करने के दौरान एक दूसरे की गलतफहमी दूर हुई है तथा पारस्परिक विश्वास बढ़ा है। सर्वधर्म समभाव जिसे अंग्रेजी में सेक्यूलरिज्म कहते हैं) के आदर्श को इस आन्दोलन की ओर से यह एक बड़ी देन मिली है, इसे कोई भी तटस्थ व्यक्ति स्वीकार करेगा। इस प्रकार जनसंघ और आर० एस० एस० को संपूर्ण क्रान्ति के 'सेक्यूलर' आन्दोलन में शरीक कर मैंने सेक्यूलरिज्म की बुनियाद को मजबूत बनाने की कोशिश की है। सम्प्रदायवाद को मिटाने की जो कोशिशें अब तक हुई हैं, उनसे भिन्न मेरी यह कोशिश है और मैं मानता हूँ कि मेरी यह कोशिश अधिक रचनात्मक है।

इन्दिराजी और उनके छुटभैयों ने हमारे आन्दोलन को अक्सर फासिस्ट कहा है, इसलिये कि हमने जनसंघ और आर० एस० एस० का साथ अपने आंदोलन में लिया है। आज इंदिराजी का जो भी विरोध करता है वह प्रतिक्रियावादी और फासिस्ट बन जाता है। फासिज्म का उदय सर्वप्रथम मुसोलिनी और हिटलर के देशों में हुआ था। वहाँ का इतिहास जानने और समझनेवाले बताते हैं कि इन्दिराजी आज उन्हीं फासिस्ट देवताओं के चरण-चिन्हों पर चल रही हैं। इसलिये अगर इस देश को फाजिस्म का खतरा है तो वह इन्दिराजी की तरफ से है। लोकतंत्र को कुचलकर फासिज्म की बुनियाद उन्हीं के कर कमलों से डाली जा रही है।

बीस-सूत्री कार्यक्रम

इन्दिराजी का दावा है कि इमरजेंसी के दौरान बीस-सूत्री कार्यक्रम लागू कर उन्होंने देश का बहुत कल्याण किया है। इमरजेंसी से होने-वाले जो अधिक लाभ गिनाये जाते हैं, उनमें मुख्य हैं : मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण, उत्पादन में वृद्धि, कार्य में अनुशासन आदि। सबसे बड़ा लाभ तो स्वयं यह बीस-सूत्री कार्यक्रम हैं जिसका बहुत ढोल पीटा जा रहा है। इसे प्रधानमंत्री का क्रांतिकारी कार्यक्रम बताया गया है। वास्तव में यह कुछ पुराने और कुछ नये कार्यक्रमों की खिचड़ी है और कोई सुनि-योजित कार्यक्रम नहीं है। इनमें से कुछ कार्यक्रम गाँवों के लिए हैं और कुछ शहरों के लिए। ग्रामीण कार्यक्रम का एक मुख्य मुद्दा है भूमि हद-बंदी कानून पर अमल और अतिरिक्त जमीन का भूमिहीनों के बीच वित-रण। ३० जून '७६ तक करीब साढ़े चालीस लाख एकड़ जमीन को हद-बंदी कानून के अंतर्गत 'अतिरिक्त' (सरप्लस) घोषित कर बाँटने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। ३१ जून '७६ तक सरकारी आंकड़ों के अनुसार करीब १८ लाख एकड़ जमीन को सरकार ने 'अतिरिक्त' घोषित किया। कहा गया है कि इसमें से दस लाख एकड़ सरकार के कब्जे में आयी और उसमें मात्र चार लाख बासठ हजार एकड़ जमीन दो लाख बीस हजार भूमिहीन परिवारों में बाँटी गयी। इस मामले में भी कुछ राज्य पीछे हैं और उनमें एक बिहार तो है ही। सरकार के ये आँकड़े भी कितने सही हैं, यह भगवान जाने, क्योंकि इमरजेंसी में सरकार को झूठ बोलने की छूट मिली हुई है। अगर मान लिया जाये कि सरकार जो कहती है वह ठीक है, तो भी यह प्रगति नगण्य मानी जायेगी। क्योंकि देश में सरकारी रिपोर्ट के ही अनुसार लगभग चार करोड़ सत्तर लाख भूमिहीन खेत-मजदूर हैं। उनमें से दो-सवा दो-लाख मजदूरों को एक-दो एकड़ जमीन मिल भी गयी तो इससे भूमिहीनता की विराट समस्या पर क्या असर होने वाला है ?

लेकिन अगर यह भी मान लिया जाये कि सरकार के बीस-सूत्री कार्यक्रम से देश को लाभ हो रहा है, तो इसको इमरजेंसी का लाभ बताना गलत है। एक विद्वान पत्रकार श्री बी० जी० वर्गीज ने अभी

हाल के अपने एक लेख में (जो गत ३ जुलाई, '७६ के अंग्रेजी साप्ताहिक 'कामर्स' में प्रकाशित हुआ है), लिखा है कि सरकार ने मुद्रा-स्फीति पर काबू करने के लिए जो कार्रवाई की, वह इमरजेंसी के पहले ही (सितम्बर १९७४ में) शुरू हो गयी थी और इमरजेंसी की घोषणा होने के पूर्व काफी हद तक प्रभावी हो चुकी थी। तस्कर व्यापार के विरुद्ध भी जो कार्रवाई हुई, वह इमरजेंसी के बहुत पहले आरम्भ हो गयी थी। और जहाँ तक उत्पादन में, खासकर अनाज के उत्पादन में, वृद्धि होने की बात है, उसका मुख्य कारण यह है कि अच्छी वर्षा के फलस्वरूप लगातार अच्छी फसलें हुईं। मुद्रा-स्फीति पर भी इसी कारण काबू किया जा सका है।

सरकार दावा करती है कि इमरजेंसी के कारण देश में अनुशासन का वातावरण बना है और उससे आर्थिक विकास में मदद मिली है। श्री वर्गीज के अनुसार 'डिसिप्लीन इज नाट इक्वल ग्रोथ', यानी अनुशासन बराबर है विकास के, ऐसा नहीं होता। सरकार का यह दावा भी सही नहीं है कि इमरजेंसी से अनुशासन की भावना पैदा हुई है। भय से लादा गया अनुशासन अनुशासन नहीं है। अनुशासन का वास्तविक अर्थ स्वानुशासन या आत्मानुशासन है कि जो कर्त्तव्य या दायित्व की भावना से उपजाता है। इमरजेंसी के दौरान भ्रष्टाचार जिस गति से बढ़ा है और जिस परिमाण में बढ़ा है, वही सरकार के इस दावे को खण्डित कर देता है। मैं नहीं कहता की बीस-सूत्री कार्यक्रम गलत है और उसे क्रियान्वित नहीं किया जाना चाहिए। वह अवश्य क्रियान्वित किया जाये। परन्तु केवल प्रचार के बल पर या इमरजेंसी का भय दिखाकर उसे अमल में नहीं लाया जा सकता। आम जनता का हार्दिक सहयोग हासिल किये बिना ये बीस-सूत्र बीस साल में भी पूरे नहीं होंगे। इसलिए अगर इंदिराजी सचमुच इस कार्यक्रम को सफल बनाना चाहती हैं तो उन्हें अपना रास्ता बदलना होगा और लोकशाही की ओर लौटना होगा। जनता को और सरकार को भी यह समझ लेना चाहिए कि २० सूत्री कार्यक्रम से थोड़ी राहत भले ही मिल जाये हमारी कोई बुनियादी समस्या नहीं हल होगी, उसके लिए पूरी आर्थिक नीति बदलनी पड़ेगी।

इन्दिराजी का समाजवाद

इन्दिराजी के अनेक नारों में एक मुख्य नारा समाजवाद है। समाजवाद की टोपी पहनकर आज हर कोई समाजवादी बन जाता है। इन्दिराजी भी समाजवादी होने का दावा करती हैं और अपने विरोधियों को वे प्रतिक्रियावादी बताती हैं। परंतु उनके समाजवाद में गरीबों की गरीबी और अमीरों की अमीरी निरन्तर बढ़ रही है। यह समाजवाद के नहीं पूंजीवाद के लक्षण हैं। इन्दिराजी के पीछे आज भारत का पूंजीवाद खड़ा है, और वह उनकी आर्थिक नीतियों में विश्वास जाहिर करता है। यह स्पष्ट है कि इन्दिराजी के समाजवाद और पूंजीवाद के बीच कोई फर्क नहीं रह गया है। तभी तो इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले के बाद जब इंदिराजी से इस्तीफे की माँग की जाने लगी, तो सर्वप्रथम भारतीय पूंजीपतियों की संस्था इण्डियन चेम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इन्डस्ट्रीज ने यह प्रस्ताव पारित किया कि इन्दिराजी को इस्तीफा नहीं देना चाहिए। इन्दिराजी जिसे समाजवाद कहती हैं, वह वास्तव में सरकारवाद या राज्यवाद है। सम्पत्ति का सरकारीकरण या केन्द्रीकरण समाजवाद हरगिज नहीं है। असली समाजवाद की व्यवस्था वह है जो आर्थिक समता एवं आर्थिक स्वतंत्रता की बुनियाद पर खड़ी होती है। आज, जो कई सरकारी उद्योग चल रहे हैं, वे पूंजीवाद के सिद्धांतों पर चल रहे हैं। वेतन में विषमता और श्रमिकों का शोषण पूंजीवाद के मुख्य लक्षण हैं और ये दोनों लक्षण इन्दिराजी के समाजवादी ढाँचे में मौजूद हैं। समाजवाद का, विशेष कर लोकतांत्रिक समाजवाद का, जिसका दावा इन्दिराजी करती हैं, एक अनिवार्य पहलू यह है कि उसमें वैयक्तिक स्वतंत्रता बनी रहे। आज जिस ढंग से वैयक्तिक स्वतंत्रता और नागरिक-अधिकारों को कुचला जा रहा है वह सिद्ध करता है कि इन्दिराजी का समाजवाद लोकतन्त्र का विरोधी है। भारत की जनता ऐसे समाजवाद को कभी स्वीकार नहीं करेगी।

इंदिराजी ने 'इमरजेंसी क्यों?' नाम की जो पुस्तिका प्रकाशित करायी है, उसमें मेरे उस चौदह-सूत्री कार्यक्रम की भी चर्चा की गयी है जो मैंने प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के सामने पेश किया था। नेहरूजी ने उसे कबूल नहीं किया, इसलिये उनकी सरकार के साथ

सहयोग करने की बातचीत विफल हो गयी। आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो लगता है कि अगर उन कार्यक्रमों को भी जोर-जबरदस्ती से, जनता का सहयोग हासिल किये बिना, क्रियान्वित किया जाता, और समाजवाद के मानवीय मूल्यों का ख्याल नहीं रहा जाता, तो इस देश में समाजवाद के नाम पर एक भयानक राज्यवाद कायम होता। मैं ऐसे समाजवाद में विश्वास करता हूँ जिसमें आर्थिक सत्ता स्वयं श्रमिक जनता के हाथों में हो और व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं नागरिक आजादी सुरक्षित रहे। मेरी राय में समाजवादी क्रांति तभी सफल होगी, जब उस क्रांति के फलस्वरूप आर्थिक सत्ता (और राजनीतिक सत्ता भी जनता के हाथों में होगी और वह बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के अपने भाग्य का निर्माण करने में समर्थ होगी। आज जिस संपूर्ण क्रांति की बात मैं कर रहा हूँ, उसमें वह क्रांति भी निहित है, जिसके गर्भ से वास्तविक समता एवं मानवीय स्वतंत्रता पर आधारित समाजवाद जन्म ग्रहण करेगा।

यह समाजवाद नहीं एक व्यक्ति का वाद है

अब स्पष्ट हो गया है कि भ्रष्टाचार, महंगाई, बेरोजगारी, शिक्षा आदि समस्याओं को हल करने के लिए देश की राजनीति बदलनी होगी, अर्थनीति और शिक्षा नीति बदलनी होगी और इस बदल की दिशा होगी महात्मा गांधी की दिशा—राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा। आज सारी सत्ता मुट्ठीभर लोगों के हाथों में, बल्कि यों कहिये, एक व्यक्ति के हाथों में केंद्रित हो गयी है। यह समाजवाद नहीं, व्यक्ति का वाद है, शुद्ध प्रतिक्रियावाद है, अधिनायकवाद है। सत्ता का यह घोर केन्द्रीकरण समाज और व्यक्ति के अस्तित्व के लिए खतरा है, हमारी स्वतंत्रता, लोकतंत्र और राष्ट्र की एकता के लिये भी खतरा है। एक केन्द्र से इतने बड़े देश पर नियंत्रण रखना संभव नहीं है। इतिहास साक्षी है कि एक केन्द्र से भारत पर शासन करने की कोशिश कभी पूरी तरह सफल नहीं हुई। ऐसे केन्द्रित राज्य बहुत दिन टिक नहीं पाये। यही कारण है कि हमारे संविधान-निर्माताओं ने स्वतंत्र भारत की राज्य-व्यवस्था को एकसंघीय रूप प्रदान किया था। परंतु आज उसे एकतंत्रीय रूप देने की कोशिश हो रही है। राज्य सरकारें अब केन्द्र की दासी मात्र रह गयी हैं। विधानसभाओं का अस्तित्व भी केन्द्रीय शासन की

मर्जी पर रह गया है। केन्द्र जब चाहे राज्य सरकारों को बर्खास्त कर सकता है और विधानसभाओं को विघटित कर सकता है। इसकी सबसे ताजा मिसाल तमिलनाडु है जहाँ द्रमुक सरकार को मनमाने ढंग से बर्खास्त कर वहाँ की विधानसभा को विघटित कर दिया गया। इंदिराजी कहती हैं कि तमिलनाडु की सरकार भ्रष्ट हो गयी थी, इसलिए उसको बर्खास्त किया गया। और विधानसभा को विघटित क्यों किया गया? इसलिए कि उसमें द्रमुक पार्टी का बहुमत था। बिहार आंदोलन ने भी तो यहाँ की भ्रष्ट सरकार को हटाने और उसकी समथक विधान-सभा को विघटित करने की माँग की थी। यह माँग बिहार की जनता ने की थी, इसलिए वह अपराध बन गयी। लेकिन तमिलनाडु में यही अपराध इन्दिराजी का अधिकार बन गया!

भ्रष्टाचार बढ़ रहा है

हमने भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठायी थी। भ्रष्टाचार-निवारण हमारे आंदोलन का एक मुख्य लक्ष्य था। इमरजेंसी के दौरान भ्रष्टाचार भयानक रूप से बढ़ा है और बढ़ रहा है। कारण यह है कि अब भ्रष्टा-चारी अफसरों, भ्रष्ट राजनीतिक नेताओं और मंत्रियों के खिलाफ कोई आवाज उठा नहीं सकता। इंदिराजी ने अपनी तानाशाही को बर-करार रखने के लिए नौकरशाही को, पुलिस अधिकारियों को तथा दूसरे सरकारी अफसरों को इतने अधिकार दे दिये हैं कि वे निरंकुश बन गये हैं। कुछ पुलिस तथा अन्य सरकारी अधिकारी भी अच्छे लोग हैं और वे जनता के साथ बहुत बुरा बर्ताव नहीं करते, क्योंकि उनकी भी समस्याएँ हैं और वे समझते हैं कि यह आंदोलन उनके लिए भी था और है। परंतु आम तौर से मौजूदा प्रशासन के अधिकारी कानून और व्यवस्था कायम रखने के नाम पर तानाशाह के जैसा बर्ताव करते हैं। ये छोटे-छोटे तानाशाह दिल्ली को सर्वोच्च तानाशाह के प्रति वफादार हैं और ये उनके ही इशारे पर काम करते हैं, उनके शब्द ही इन अधिकारियों के लिए कानून हैं। वे और किसी कानून का अनुशासन नहीं मानते। आज अनुशासन की बातें बहुत होती हैं। जनता को, युवकों को, छात्रों को अनुशासित करने के लिए इमरजेंसी तक लागू की गयी है। परंतु इस तथाकथित अनुशासन-पर्व में अनुशासन का सबसे

अधिक भंग अगर किसी ने किया है तो हमारे शासकों ने किया है और आज भी कर रहे हैं। जनता अनुशासित हो, युवक और छात्र अनुशासित हों, लेकिन सत्ता निरंकुश रहे तो कैसे चलेगा? यह निरंकुश सत्ता ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार पर पल रही है। कुछ थोड़े तस्कर-व्यापारियों या भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध प्रशासनिक कार्रवाई करने-मात्र से भ्रष्टाचार मिट नहीं सकता। यह तो हाथी के दिखावटी दाँत हैं। उसके असली दाँतों को तोड़ने की कोशिश नहीं होती।

भ्रष्टाचार की गंगोत्री

भ्रष्टाचार पर रोक लगाने की बातें बहुत हुई हैं। लेकिन भ्रष्टाचार बढ़ता ही गया है। ग्यारह वर्ष पूर्व इस सवाल पर संतानम कमिटी बैठी। उसने रिपोर्ट भी दी। लेकिन उसके सुझावों को ईमानदारी से अमल में लाने की कोशिश आज तक नहीं हुई। कुछ राज्यों में लोकायुक्त कानून बना है और वह लागू भी हुआ है। परंतु उसके अधिकार इतने सीमित हैं और इस कानून में इतने छिद्र हैं कि लोकायुक्त भी भ्रष्टाचार के विरुद्ध कोई प्रभावी कार्रवाई नहीं कर सकता। वह राज्य के मुख्य-मंत्री के भ्रष्टाचार की जाँच तक नहीं कर सकता। मानो, एक हाथ से उसको अधिकार देकर दूसरे हाथ से छीन लिया गया है। केन्द्र में भी लोकपाल बिल बना है, परंतु वह अभी कानून का रूप भी नहीं ले पाया है। उस बिल के मुताबिक लोकपाल को भी यह अधिकार नहीं होगा कि वह प्रधानमंत्री के भ्रष्टाचार की जाँच कर सके। यानी भ्रष्टाचार की गंगोत्री जहाँ है, वही क्षेत्र लोकायुक्त और लोकपाल के अधिकार-क्षेत्र के बाहर रखा गया है। तो फिर भ्रष्टाचार कैसे मिटेगा, क्योंकर मिटेगा? कुछ वर्ष पूर्व मैंने अपनी एक मुलाकात में इंदिराजी से कहा था कि अगर भ्रष्टाचार मिटाना है तो संतानम कमिटी के सुझावों को ईमानदारी से लागू करायें और लोकायुक्त एवं लोकपाल को मुख्य मंत्री तथा प्रधानमंत्री के भ्रष्टाचार की जाँच करने का भी हक दिया जाये। परंतु मेरी कौन सुनता है?

अधिकार दिया नहीं, लिया जाता है

इस प्रकार एक सिद्धांतहीन और भ्रष्ट राजनीति इस देश में चलायी जा रही है और जनता को कुण्ठित कर एक सर्व-सत्तावादी व्यक्ति(वत्री)

का निर्माण किया जा रहा है। इसको रोकने का एक ही उपाय है कि आप सजग और संगठित होकर अपनी आवाज बुलंद करें और उन अधिकारों की माँग करें जो छीने गये हैं और छीने जा रहे हैं। कहते हैं, अधिकार दिया नहीं, लिया जाता है। इसलिए आपको भी अपना अधिकार लेना होगा, अपनी संगठित शक्ति से हासिल करना होगा। आज शासन की तरफ से नागरिकों के कर्तव्य पर बहुत जोर दिया जा रहा है, और संविधान में भी नागरिकों के कुछ 'बुनियादी कर्तव्य' दाखिल किये जा रहे हैं। जाहिर है कि यह सब जनता के गले में तानाशाही का शिकंजा मजबूत बनाने के लिए किया जा रहा है। जनता को कर्तव्य का उपदेश देनेवालों का पहला कर्तव्य यह है कि वे जनता को उनके छीने गये अधिकार लौटा दें और वह लोकतंत्र वापस कर दें जो हमने राष्ट्रीय आजादी के साथ हासिल किया था। कर्तव्य जनता के लिए और अधिकार इंदिराजी के लिए या उनके मुट्ठी भर अमलदारों के लिए, यह तो नहीं चल सकता। जनता अपना कर्त्तव्य करेगी, लेकिन अपने अधिकार खोकर नहीं। अपने खोये हुए अधिकारों को हासिल करना ही आज उसका सबसे महान और बुनियादी कर्त्तव्य है।

अधिकारों की प्राप्ति के लिए हमें सर्वप्रथम भय का त्याग करना होगा। हमने जिस तरीकेसे राष्ट्रीय आजादी हासिल की थी उसी तरीके से हम लोकतांत्रिक आजादी, नागरिक आजादी भी हासिल कर सकते हैं। गांधीजी के नेतृत्व में आजादी के लिए लाखों लोग जेल गये और जेलें भर गयीं। हमारे आंदोलन के सिलसिले में भी डेढ़-दो लाख लोग जेल गये। जानकार लोग बताते हैं कि आजादी की लड़ाई के दौरान भी एक समय में इससे अधिक लोग जेल नहीं गये थे। लेकिन अब इतना ही काफी नहीं है। मौजूदा सरकार विदेशी अंग्रेज सरकार से भी ज्यादा जालिम है। अंग्रेज सरकार पर ब्रिटिश संसद का अंकुश था। वर्तमान शासन तो निरंकुश है। ऐसे शासन से अधिकार प्राप्त करने के लिए और भी बड़ी कुर्बानी करने के लिए तैयार होना होगा। जेल का भय त्यागना तो पहली शर्त है।

रोटी बनाम आजादी

इन्दिराजी के समर्थक बार-बार यह कहते हैं कि जनता को रोटी चाहिए और इसका प्रबंध उनकी सरकार कर रही है। जनता को

नागरिक-अधिकारों से क्या मतलब? इन अधिकारों की माँग तो वे थोड़े-से लोग करते हैं जो विरोधी दलों के हैं या जो शहरों में बैठकर बहस और आलोचना करने के आदी हैं। इन्दिराजी के लोकतंत्र की कल्पना यह है कि जनता मूक पशु की तरह जीये, और जो कोई शासन की आलोचना करता है, उसके लिए जेल के दरवाजे खोल दिये जायें। बोलने का अधिकार केवल उन्हें हो जो इंदिराजी के 'जी-हुजूर' बनकर उनकी प्रशंसा का पुल बाँध सकते हों और उनका तथा उनके वंश का जय-जयकार कर सकते हों। क्या ऐसा ही लोकतंत्र आपको चाहिए? अगर नहीं तो आपको स्पष्ट कहना होगा कि हमें सिर्फ रोटी नहीं, वैयक्तिक आजादी चाहिए, नागरिक स्वतंत्रता चाहिए। हम मूक पशु की तरह नहीं, आजाद इन्सान की तरह जीना चाहते हैं। हमें रोटी का अधिकार चाहिए, भीख नहीं, और इस अधिकार के साथ-साथ वे सारी स्वतंत्रताएँ चाहिए जो एक स्वतंत्रत देशके नागरिकों के लिए जरूरी है।

इमरजेंसी उठाने का सवाल

लोग मुझसे अक्सर पूछते हैं कि इमरजेंसी कब हटेगी, कैसे हटेगी? इंदिराजी बराबर यह कहती हैं कि इमरजेंसी हमेशा कायम नहीं रहेगी, लेकिन वे यह नहीं बतातीं कि वह कब हटाई जायेगी। अभी तक विपक्षी दलोंके तथा हमारे आंदोलनके हजारों लोगों को उन्होंने आंतरिक शांति व सुरक्षा के नाम पर नजरबंद रखा है और उनकी नजरबंदी बढ़ाई जा रही है। पिछले साल २६ जून को इमरजेंसी लागू करते समय इदिराजी ने कहा था कि आंतरिक स्थिति में सुधार होते ही आपात् स्थिति की घोषणा समाप्त हो जायगी। लेकिन अभी तक वह कायम है। क्यों कायम है, यह लोगों की समझ में नहीं आता। आज सारे देश में शांति है और कहीं तोड़-फोड़ की घटना नहीं हो रही है। अगर यह मान भी लिया जाय कि इमरजेंसी के पहले देश में अशांति थी तो अब वह स्थिति नहीं है। तोड़-फोड़ न तो इमरजेंसी के पहले हो रहा था और न अब हो रहा है। फिर भी इमरजेंसी क्यों नहीं उठायी जा रही है, क्यों अखबारों पर सेंसरशिप लगी हुई है, और क्यों राजनीतिक बंदियों को रिहा नहीं किया जा रहा है? अभी तक कुछ अपवादों को छोड़ वे ही नेता रिहा किये गये हैं जिनका स्वास्थ्य जेल में खराब हो

गया था या जो मरणासन्न हो गये थे। इसका एक उदाहरण तो मैं ही हूँ। मेरे अलावा सर्वश्री नवकृष्ण चौधरी, अटलबिहारी वाजपेयी, अशोक मेहता आदि जेल में बुरी तरह अस्वस्थ हो जाने के बाद ही रिहा किये गये और आज भी वे पूरी तरह स्वस्थ नहीं हुए हैं। कई लोग तो जेल में बीमार होकर मर भी गये। चंडीगढ़ के एक बड़े वकील श्री सी० एल० लखनपाल का देहान्त अभी हाल में ही चंडीगढ़ जेल में हो गया। बिहार में प्रोफेसर रामचन्द्र शाही की मृत्यु कुछ दिन पूर्व दरभंगा जेल में हो गयी। और भी कई लोगों की मृत्यु जेलों मे हुई है। अभी-अभी बिहार के सर्वोदय नेता श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी की मृत्यु वाराणसी में हुई। जेल में जब उनका स्वास्थ्य काफी खराब हो गया तभी उनको छोड़ा गया। आखिर इन लोगों ने कौन-सा अपराध किया था कि इन्हें जेलों में सड़ाकर मौत के दरवाजे तक पहुंचा दिया गया? इंदिराजी चाहती क्या हैं, यह समझ में नहीं आता।

बातचीत के लिए पहल

बम्बई में जब मैं था, तो मेरे कई मित्रों ने मुझे सलाह दी कि वर्तमान राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए मैं ही अपनी ओर से पहल करूँ। इन्दिराजी ने भी कुछ महीने पूर्व लोकसभा में यह बयान दिया था कि वे विरोधी पक्ष से बातचीत करने के लिए तैयार हैं। उस पर से मैंने विगत १८ जनवरी, '७६ को इन्दिराजी को इस आशय का एक पत्र लिखा कि राजनीतिक गतिरोध को भंग करने हेतु बातचीत करने के लिए मैं तैयार हूँ, परन्तु यह तभी सम्भव है जब अपने वरिष्ठ सहयोगियों से, जो जेलों में बन्द हैं, सलाह-परामर्श करने का अवसर मुझे मिले। यह पत्र मैंने समाजवादी नेता श्री एन० जी० गोरे के हाथ इन्दिरा जी के पास भेजा था। अभी तक उस पत्र का कोई उत्तर नहीं मिला। अगर इन्दिराजी ने यह तय कर लिया है कि इस देश में अब लोकशाही नहीं, तानाशाही ही चलेगी, तो फिर विरोधी पक्ष से बातचीत करने की जरूरत नहीं। लेकिन वे तो बार-बार लोकतंत्र की और संसदीय लोकतंत्र की दुहाई देती हैं। अगर इन्दिराजी सचमुच चाहती हैं कि इस देश में संसदीय लोकतंत्र चले तो विरोधी पक्षों को दबाने और मिटाने के बदले उसका सहयोग हासिल करना चाहिए और लोकतंत्र को पटरी

पर लाने के लिए खुले मानस से उनके साथ बातचीत करनी चाहिए। जब इमरजेन्सी उठाने और राजनीतिक बंदियों को रिहा करने का सवाल उठाया जाता है तो इन्दिराजी कहती हैं कि अभी तक विरोधी दलों के लोगों का और अन्य आंदोलनकारियों का विचार नहीं बदला है, वे अपने विचारों पर कायम हैं। तो क्या वे समझती हैं कि किसी को जेल में डाल देने से उसका विचार बदल जायेगा ? क्या महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के विचार अंग्रेजों के जेल में रहने के कारण बदल गये थे ? अगर नहीं तो आज इंदिराजी के जल में जो बद है, उनका विचार कैसे बदल जायेगा ? भारत जैसे देश का प्रधानमंत्री के मुँह से ऐसी बात निकले, यह शर्म की बात है। अगर किसी का विचार वे बदलना चाहती हैं तो वह पारस्परिक समझदारी पैदा करने से बदल सकता है, बातचीत करने से बदल सकता है।

हार कबूल नहीं

लेकिन अभी तक ऐसा कोई संकेत प्रधानमंत्री की ओर से नहीं मिला है कि वे इमरजेन्सी उठाने और सामान्य स्थिति वापस लाने के सवाल पर खुले मानस से बातचीत करने के लिए तैयार हैं। कुछ सूत्रों के अनुसार शायद इन्दिराजी यह महसूस करती हैं कि जयप्रकाश नारायण तो अब भी 'वार-पाथ' पर हैं, युद्ध के मार्ग पर हैं, तो उनसे बातचीत क्या होगी ? मेरा उत्तर है कि बातचीत की जरूरत तभी होती है जब दोनों पक्ष युद्ध के मार्ग पर होते हैं। मैं तो अब एक घायल सिपाही हूँ। युद्ध तो मैं कर नहीं सकता। लेकिन लोकतंत्र की वापसी के लिए और उन सारे अधिकारों की प्राप्ति के लिए जो जनता ने खोये हैं, मैं शहीद होने के लिए तैयार हूँ। जब तक हमारे हजारों साथी जेलों में बंद हैं, तब तक युद्ध जारी है, और यह दोनों तरफ से जारी है। अभी हाल में इन्दिराजी ने कहा था कि विरोधी पक्ष हार तो गया है, लेकिन उसने हार कबूल नहीं की है। जवाहरलाल नेहरू की बेटी होकर भी वे ऐसी बातें कहती हैं और महात्मा गांधी के देश के लोगों से कहती हैं। मैं मानता हूँ कि गांधी का असर अब भी इस देश की जनता पर और युवकों पर कुछ बाकी है, और जब तक वह असर है, गांधी का कोई भी अनुयायी किसी हिटलर के सामने भी घुटने नही टेकेगा।

हम सत्याग्रही हैं और गांधी का यह वचन हमें याद है कि सत्याग्रह में हार नहीं होती। इमरजेंसी घोषित होने के बाद उसके विरुद्ध देश में जगह जगह सत्याग्रह का आयोजन किया गया और उसमें भाग लेनेवाले हजारों व्यक्ति गिरफ्तार होकर जेल गये। विशेषकर बिहार में २ अक्टूबर, '७५ से सत्याग्रह का एक दौर चला जिसमें लगभग तीन हजार व्यक्ति गिरफ्तार हुए। १४ नवम्बर '७५ से २६ जनवरी '७६ तक देशव्यापी सत्याग्रह का एक लंबा दौर चला जिसमें कोई सड़सठ हजार व्यक्ति शामिल हुए और गिरफ्तार हुए। इमरजेंसी के खिलाफ सत्याग्रह का एक शानदार नमूना पजाब ने पेश किया है जिसका श्रेय शिरोमणि अकाली दल के साथियों को है। वहाँ २६ जून '७५ से ही सत्याग्रह चल रहा है, और आये दिन लोग सत्याग्रह करके जेल जा रहे हैं। ऐसे सातत्यपूर्ण सत्याग्रह का उदाहरण आजादी के आंदोलन में भी मिलना कठिन है। आज ऊपर से भले ही लगता हो कि स्थापित सत्ता के मुकाबले हमारा आंदोलन पीछे हटा है, परन्तु जरा गहराई से देखिये तो जाहिर होगा कि वास्तव में हम एक कदम आगे ही बढ़े हैं। इस आंदोलन से देश में अद्भुत जन-जागृति हुई है। श्री धीरेन्द्र भाई मजूमदार, जो इस देश के एक बड़े नेता और विचारक हैं, अपने अनुभव से बताते हैं कि भारतीय जनता के मन पर इस आंदोलन का प्रभाव सन् '४२ के आंदोलन से भी अधिक व्यापक और गहरा हुआ है और आज वह पहले से अधिक जाग्रत है। इसलिए हार कबूल करने का सवाल ही हमारे लिए नहीं उठता।

आचार्य-सम्मेलन और विनोबा

आपने आचार्य सम्मेलन के बारे में सुना होगा जो विगत १६, १७, १८ जनवरी को पवनार आश्रम में विनोबाजी की प्रेरणा से आयोजित हुआ था। सम्मेलन में विनोबाजी के आमंत्रण पर देश के विभिन्न क्षेत्रों से आये हुए आचार्यों ने भाग लिया था। विनोबाजी की परिभाषा के अनुसार 'आचार्य' वह है जो निष्पक्ष हो, निर्वैर हो और निर्भीक हो। ऐसे आचार्यों ने देश की परिस्थिति पर तीन दिनों तक तटस्थ दृष्टिकोण से विचार किया और सर्वसम्मति से एक निवेदन (प्रस्ताव) स्वीकृत किया जिसमें और बातों के अलावा यह कहा गया कि इमरजेन्सी

शीघ्र हटायी जाये, समाचार-पत्रों पर से पाबंदी उठायी जाये, जेलों में जो कार्यकर्ता हजारों की संख्या में पड़े हैं, उन्हें मुक्त किया जाये और सही एवं स्वतंत्र चुनाव कराये जायें। यह निवेदन लेकर विनोबाजी के एक निकट सहयोगी डा० श्रीमन्नारायण इंदिराजी से मिलने के लिए दिल्ली गये। वहाँ वे सप्ताह भर रहे, लेकिन इंदिराजी उनसे नहीं मिलीं। लेकिन कुछ दिन बाद वे खुद विनोबाजी से जाकर मिलीं और उनसे बातचीत की। बाद में पता चला कि इस बातचीत से विनोबाजी के मन में यह धारणा बनी थी कि इमरजेंसी २६ जून, '७६ तक उठा ली जायेगी और जेलों में पड़े राजबंदी भी छोड़ दिये जायेंगे। लेकिन विनोबाजी की यह आशा पूरी नहीं हुई।

'अनुशासन-पर्व' की व्याख्या

मैं आपसे यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि ये सारी बातें आपके जीवन से ताल्लुक रखती हैं। आप जानते होंगे कि विनोबाजी ने हमारे आंदोलन के प्रति आरंभ से ही एक तटस्थ रुख अपनाया था। उनकी इस तटस्थता का अर्थ आम लोगों ने यह लगाया कि वे इंदिरा जी के समर्थक हो गये हैं। और जब आपात-काल को उन्होंने 'अनुशासन-पर्व' की संज्ञा दी तो लोगों की यह धारणा और भी पुष्ट हो गयी तथा उन्हें 'सरकारी संत' तक की उपाधि मिलने लगी! सरकार ने भी तथाकथित अनुशासन-पर्व का ढोल खूब पीटा। बाद में विनोबाजी ने अपने मौन-काल की समाप्ति पर अनुशासन-पर्व की व्याख्या की और अनुशासन का वास्तविक अर्थ बताया। उन्होंने कहा कि शासन को आचार्यों का अनुशासन कबूल करना चाहिए और अगर वह ऐसा नहीं करता तो ऐसे शासन के विरुद्ध नागरिकों को सत्याग्रह करने का अधिकार है। विनोबाजी की इस व्याख्या से अनुशासन-पर्व के बारे में तथा खुद उनकी भूमिका के बारे में भ्रम-निवारण हुआ है। संभवतः आगामी २ अक्तूबर, '७६ को एक दूसरा आचार्य सम्मेलन विनोबाजी के सान्निध्य में होगा। इस सम्मेलन के प्रस्ताव को भी यदि सरकार मान्य नहीं करेगी तो विनोबाजी स्वयं सत्याग्रह करेंगे, ऐसा संकेत मिला है। उनके सत्याग्रह से भारतीय जनता को आगे बढ़ने की एक दिशा मिलेगी, ऐसी आशा है।

विनोबा बनाम जे० पी० का प्रश्न नहीं

इमरजेन्सी के दौरान एक आम धारणा यह बनी कि विनोबाजी तथा मेरे बीच वर्तमान परिस्थिति के मूल्यांकन और उसके समाधान के प्रश्न पर गहरा मतभेद है। मुझे इस बात की खुशी है कि यह भ्रम अब दूर हो रहा है। वास्तव में हम दोनों के बीच बुनियादी प्रश्नों पर कोई बड़ा मतभेद या विचार-भेद नहीं है। परन्तु मेरे और उनके 'अप्रोच' में, सोचने के ढंग में फर्क रहा है। आप जानते हैं कि विनोबाजी एक संत हैं. आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं। लेकिन मैं तो सामाजिक दृष्टिकोण से विचार करता हूँ। इसलिए हम दोनों के काम करने के तरीकों में भी फर्क पड़ जाता है। इस फर्क के कारण हमारे साथियों में भी मतभेद पैदा होते हैं और हुए हैं। परन्तु आज हमारा देश जिस विकट परिस्थिति में पड़ा है, उससे उसको उबारने के लिए विनोबाजी के आध्यात्मिक नेतृत्व की जरूरत है। इसलिए सब लोगों से मेरी प्रार्थना है कि विनोबाजी जो कुछ कहते या करते हैं उस पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए जो उचित मालूम पड़े वह करना चाहिए।

गोवध बंदी का सवाल

मिसाल के लिए, अभी गोवध-बंदी का सवाल विनोबाजी ने उठाया है और यह संकल्प जाहिर किया है कि अगर ११ सितम्बर '७६ तक (जो उनका जन्म दिन है) सरकार ने देश भर में गोवध बन्दी की घोषणा नहीं की तो वे उस दिन से आमरण उपवास शुरू करेंगे। उनके इस संकल्प का समाचार सरकार ने अखबारों में छपने नहीं दिया, और जब पवनार आश्रम की पत्रिका 'मैत्री' में यह समाचार प्रकाशित हुआ तो सरकार के आदेशानुसार पुलिस 'मैत्री' की लगभग चार हजार प्रतियाँ उठा ले गयी। फिर बाद में इन्दिराजी को सुबुद्धि हुई और 'मैत्री' की प्रतियाँ लौटा दी गयीं। सर्व सेवा संघ के कार्यकारी अध्यक्ष श्री रा० कृ० पाटिल ने मुझे यहाँ बताया कि गोवध-बंदी के सवाल पर सरकार विचार कर रही है। अगर उसने विनोबा की माँग स्वीकार कर ली तो ठीक है, अन्यथा ११ सितम्बर से उनका उपवास अनिश्चित

काल के लिए शुरू हो जायेगा। इस सवाल पर मैंने विनोबाजी का समर्थन किया है और मुझे विश्वास है कि देश भर के लोग और सब धर्मों के लोग उनका समर्थन करेंगे, क्योंकि गोवध-बंदी का सवाल कोई साम्प्रदायिक सवाल तो है नहीं। सरकार से उनकी माँग यही है कि इस संबंध में संविधान और सर्वोच्च न्यायालय का जो निर्णय है, उसको ही वह सारे देश में क्रियान्वित करे। भारत के अधिकांश प्रदेशों में गोवध-बंदी पहले से लागू है। थोड़े से प्रदेश हैं—जैसे महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, केरल, तामिलनाडु आदि जहाँ गोवध-बंदी लागू नहीं है। अगर सरकार इन प्रदेशों में भी उसे लागू कर देती है तो विनोबाजी का उपवास टल जायेगा। लेकिन अगर सरकार की दुराग्रही नीति के कारण वह नहीं हुआ तो विनोबाजी उपवास करेंगे, और इसके लिए हमें तैयार रहना चाहिए।

अब कार्यक्रम क्या हो ?

आंदोलन के साथी या सहयोगी मित्र बार-बार आकर मुझसे पूछते हैं कि अब कार्यक्रम क्या होगा, कुछ नया कार्यक्रम दीजिये। नया कार्यक्रम देना तो आसान है। लेकिन उसपर अमल अभीष्ट या व्यापक पैमाने पर होगा, यह अभी संभव है क्या ? आज तो चारों तरफ भय छाया हुआ है, और अधिकांश जनता लोकतंत्र के अपने बुनियादी अधिकारों से अनभिज्ञ है और उस तरफ से उदासीन है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य का क्या महत्व है और एक स्वतंत्र देश के नागरिकों के लिए वह कितना अनिवार्य है, यह शायद सौ में नब्बे लोग महसूस नहीं करते। ऐसी परिस्थिति में सजग और जाग्रत लोगों का सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक कर्तव्य है कि वे देहातों और शहरों की जनता के बीच जायें और उनसे व्यक्तिगत संपर्क स्थापित कर ये बातें उन्हें समझायें। आज सभाएँ हो नहीं सकती, सेंसरशिप की कठोर पाबन्दियों के कारण समाचार-पत्रों में हमारी बातें छप नहीं सकतीं, इसलिए व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा जनता का शिक्षण और प्रबोधन किया जा सकता है।

इस सवाल पर विनोबाजी तथा श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार के बीच समझौता हो गया है जिसके फलस्वरूप विनोबाजी का प्रस्तावित उपवास टल गया है।

अपने खोये हुए अधिकारों की माँग करें

एक प्रश्न जिसे इस समय व्यापक रूप से उठाने की आवश्यकता है वह है चुनाव का प्रश्न। अपने संविधान के अनुसार हर वयस्क नागरिक को हर पाँच साल पर लोकसभा और विधान-सभा के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। पाँच वर्षों में एक ही बार उसको यह मौका मिलता है। भारतीय लोकतन्त्र के वर्तमान ढाँचे के अंदर उसकी और कोई सक्रिय भूमिका नहीं है। लेकिन उसका यह अधिकार भी आज छिन गया है। अभी जो लोकसभा चल रही है, उसका कार्यकाल पिछले मार्च में ही समाप्त हो चुका है। इमरजेन्सी का फायदा उठाकर प्रधानमंत्री ने उसका कार्यकाल एक वर्ष के लिए बढ़ा दिया है और चुनाव टाल दिये हैं। अगर जनता की ओर से इसके विरुद्ध जोरदार आवाज नहीं उठायी गयी तो लोक-सभा का कार्यकाल बढ़ाया जाता रहेगा और जनता अपने अधिकारों से वंचित रहेगी। जनता की उदासीनता से लाभ उठाकर तानाशाही को अपना आसन और भी मजबूत करने का मौका मिल रहा है। इंदिराजी की यह तानाशाही लोकमत के समर्थन पर कायम नहीं है; वह जनता की उदासीनता के कारण कायम है। इसलिए इमरजेन्सी उठाने और अगले फरवरी-मार्च में चुनाव कराने की माँग करना प्रत्येक नागरिक का एक महत्वपूर्ण और बुनियादी कर्तव्य है। यह एक संवैधानिक कानून-संगत कार्यक्रम हो सकता है और इसमें आप सब लोग निडर होकर भाग ले सकते हैं।

संपूर्ण क्रांति सतत् क्रांति है

शुरू से ही अपने भाषणों में मैं कहता रहा हूँ कि हमारा आंदोलन संपूर्ण क्रांति के लिए है। यानी समाज और व्यक्ति के जीवन के हर पहलू में क्रांतिकारी परिवर्तन हो और व्यक्ति का, समाज का, विकास हो, दोनों ऊँचा उठें, इसके लिए यह आंदोलन है। यह आंदोलन केवल शासन बदलने के लिए नहीं, समाज और व्यक्ति को बदलने के लिए है। इसलिए मैंने इसको संपूर्ण क्रांति का नाम दिया है। आप इसे समग्र क्रांति भी कह सकते हैं। समग्र और संपूर्ण में अर्थ की भिन्नता तो जरूर है, लेकिन मेरे लिए दोनों लगभग एक ही हैं। समग्र क्रांति भी संपूर्ण हो सकती है। उसमें अगर पूर्णता जोड़ दी जाये तो संपूर्ण समग्र क्रांति

हुई। यह कोई एक दिन में, एक-दो साल में होनेवाली बात नहीं है। इसके लिए लम्बे अर्से तक संघर्ष चलाना होगा, जूझना होगा, और साथ-साथ रचनात्मक एवं सृजनात्मक काम करने होंगे। संघर्ष और रचना की दोहरी प्रक्रिया संपूर्ण क्रांति को फलीभूत करने के लिए आवश्यक है। अभी तो ऐसी परिस्थिति है कि जनता भयभीत है और नेता तथा कार्यकर्ता हजारों की संख्या में जेलों में बंद हैं। तो संभव है कि पिछले साल जिस रूप में क्रांति चल रही थी, उस रूप में इसको चलाने वालों की अनुपस्थिति में वह न चले। परंतु चूंकि हर क्षेत्र में क्रांति करनी है, इसलिए आप सब लोगों से मेरा निवेदन है कि देश और समाज के लिए आप सोचते हैं तो आपमें से हर एक को इस क्रांति में योगदान करना चाहिए। मिसाल के तौर पर, शिक्षा का ही क्षेत्र लीजिये। प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में आमूल परिवर्तन होने चाहिए, ऐसी एक आम राय है। शिक्षा-शास्त्रियों की भी राय है। कोठारी-कमीशन की भी राय थी। लेकिन इस दिशा में बहुत थोड़ा ही हुआ है। इस प्रश्न को लेकर विद्यार्थियों में घोर असंतोष है क्योंकि यह शिक्षा दोषपूर्ण है और उनका भविष्य अंधकार-मय है। उनके असंतोष को अभी दबा दिया गया है। परन्तु असंतोष तो उनके मन में कायम है और वह फिर कभी न कभी समय पाकर उभरेगा। इससे समस्या का हल हो जायेगा, ऐसी बात तो नहीं है। लेकिन इस प्रकार बातें, इस प्रकार के विस्फोट जब होते हैं तो समाज को; समाज के नेताओं को चेतावनी मिलती है कि अब सम्हल जाओ, सर्वनाश होगा, रास्ता अपना बदलो, कुछ सोचो-समझो, कुछ करो।

इसी प्रकार और भी समस्याएँ, खासकर हरिजन और आदिवासी जनता की आर्थिक और सामाजिक समस्याएँ हैं, आर्थिक दृष्टि से वे गरीब और पिछड़े हुए तो हैं ही। सामाजिक दृष्टि से उनकी हालत और भी भयानक है। आज भी हरिजनों के साथ सवर्णों का दुर्व्यवहार होता है और उन्हें अस्पृश्य समझ कर अलग रखा जाता है। इतना ही नहीं, उनके प्रति सवर्णों का आक्रोश कभी-कभी भयानक रूप लेता है। हरिजनों को जीवित जला देने की अनेक घटनाएं हुई हैं और होती रहती हैं। सम्पूर्ण क्रांति के सिपाहियों को इस विस्फोटक परिस्थिति का रचनात्मक हल ढूँढ़ना होगा। इसके लिए उन्हें हरिजन और आदिवासी जनता के जीवन में प्रवेश करना होगा और अपनी सेवाओं से उनका

दिल जीत कर भारतीय समाज की मुख्य धारा में उन्हें ले जाना होगा। यह एक ऐसी रचनात्मक सेवा है जिसके बिना सम्पूर्ण क्रांति अधूरी रह जायेगी।

जन आंदोलन फिर उभरेगा

अभी तो मैं देखता हूँ कि इस दिशा में जो लोग कुछ कर सकते थे, वे जेलों में बन्द हैं और जो शासन में हैं वे चाहे श्रीमती इन्दिरा गांधी हों या और कोई हो, यही समझते हैं कि जनता को दबा करके रखना चाहिए, जनता पर शासन करना चाहिए; हम शासक हैं इसलिए जनता को शांतिमय रहकर हमारा आदेश पालन करना चाहिए। जनता का सहयोग प्राप्त करने की बातें बहुत होती हैं। लेकिन इस प्रकार जनता को गुलाम रखकर उसका सहयोग प्राप्त करना तो असम्भव है। यह स्थिति कब तक चलेगी, मैं नहीं कह सकता। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है अभी लोकतंत्र का सम्पूर्ण बध तो नहीं हुआ है, लेकिन उसको समाप्त करने की पूरी कोशिश की जा रही है। पर मुझे विश्वास है 'लोक' के ऊपर, जनता के ऊपर। मैं मानता हूँ कि यह स्थिति जनता को असह्य होगी। और फिर आज हो, कल हो या परसों हो, निकट भविष्य में ही जन आंदोलन फिर उभरेगा। वह चाहे बिस्फोट के रूप में हो या उसका शांतिमय रूप हो, आंदोलन फिर से छिड़नेवाला है और परिवर्तन होनेवाला है, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।

जनता जागे, युवक जागें

जहाँ तक शासन की बात है, वह जो कुछ समझेगा वही करेगा। हम तो अपनी राय ही दे सकते हैं। लेकिन जहाँ तक जनता का संबंध है, उसको जाग्रत होना चाहिए। युवकों को भी जाग्रत होना चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि देश किधर जा रहा है और उनकी क्या जिम्मेदारी है। ये सब बहुत गंभीर बातें हैं जिन पर उनको ध्यान देना चाहिए। अगर देश के युवक, देश की जनता—शहर और देहात की आम जनता—जाग्रत और संगठित हो तो परिस्थिति बदल सकती है और वह बदलकर रहेगी, ऐसी आशा और विश्वास मुझे है।

अब प्रश्न है कि वर्तमान परिस्थिति में संपूर्ण क्रांति के लिए क्या करें। संपूर्ण क्रांति के चार पहलू हैं : संघर्षात्मक, रचनात्मक, प्रचारात्मक, और संगठनात्मक। आज की स्थिति में हमें रचनात्मक पहलू पर अपनी शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए। मिसाल के लिए तिलक-दहेज की प्रथा, जाति-भेद, अस्पृश्यता, सम्प्रदायवाद आदि बुराइयों के विरुद्ध जनमानस और युवा-मानस तैयार करना तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण की दिशा में सामूहिक प्रयत्न करना हमारे कार्यक्रम का एक प्रमुख अंग होना चाहिए। संपूर्ण क्रांति है, वह निरन्तर चलेगी और व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को बदलती चलेगी। इस क्रांति में ठहराव नहीं है, विराम नहीं है, पूर्ण विराम तो हरगिज नहीं है। परिस्थिति के अनुसार उसके रूप बदलेंगे, कार्यक्रम बदलेंगे, प्रक्रियाएँ बदलेंगी और वक्त आने पर नयी शक्तियों का ऐसा उभार होगा जो परिवर्तन के रथ को धक्का मार कर आगे बढ़ा देगा। संपूर्ण क्रांति के सिपाही उस क्षण की प्रतीक्षा करें—सतत् कार्य रत रहकर।

क्रांति का अगला केन्द्र गाँव

यह तो हमारे कार्यक्रम का सामाजिक पक्ष हुआ। उसके आर्थिक पक्ष पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। जनता की समस्याएँ, किसानों और मजदूरों की समस्याएँ इमरजेंसी के दौरान और भी जटिल हो गयी हैं। आंदोलन के दबाव से और पिछले साल अच्छी वर्षा होने के कारण महंगाई पर तो कुछ रोक लगी है और मुद्रा-स्फीति भी कुछ थमी है। लेकिन अनाज को छोड़, दूसरी चीजों के दाम ऊँचे ही हैं। नतीजा यह है कि इस देश का सबसे बड़ा वर्ग—किसान वर्ग—आर्थिक दृष्टि से तबाह और परेशान है। फिर भी बंदूक की नोंक पर उससे ऋण वसूले जा रहे हैं, वर्षों का बकाया लगान अदा कराया जा रहा है और नहीं देने पर गाय-बैल की कुर्की-जब्ती की जा रही है। दूसरी तरफ मजदूर-वर्ग भी परेशान हैं। उसके बोनस का हक छीन लिया गया। लेकिन वह आवाज नहीं उठा सकता, क्योंकि इमरजेन्सी लगी हुई है। सरकार कहती है कि औद्योगिक उत्पादन बढ़ा है। अगर बढ़ा है तो उसका हिस्सा मजदूरों को क्यों नहीं मिल रहा है? मजदूरों के वेतन में वृद्धि होने के बदले कटौती हुई है और कई कारखाने बन्द हो जाने के कारण बेकार होनेवाले

मजदूरों की संख्या कई लाख तक पहुँच गयी है। एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री अशोक मित्रा (जो पहले भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार थे) कहते हैं कि उत्पादित वस्तुओं की माँग और खपत में ऐसी गिरावट आजादी के बाद पहले कभी नहीं हुई थी। उनके अनुसार आम लोगों की क्रय-शक्ति १९६७ के अकाल के समय जो थी, उससे भी आज कम हो गयी है, और इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि वर्तमान आर्थिक व्यवस्था बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली वर्गों के हितों की ही रक्षा करती है। इस व्यवस्था मे आमदनी और संपत्ति का पुनर्वितरण नहीं हो रहा है, इसलिए साधनों की और मनुष्य-शक्ति की बर्बादी हो रही है। गाँव के खेतिहर मजदूरों का तो और बुरा हाल है और हरिजन तथा आदिवासी जनता के जीवन में भी कोई फर्क नहीं पड़ा है, बावजूद इसके कि उनके ही कल्याण की बातें सबसे ज्यादा की जा रही हैं। भूमि-सुधार और भूमिहीन मजदूरों के बीच जमीन बाँटने का शोर खूब मचाया गया है। अखबारों में जमीन बाँटने की खबरें रोज छप रही हैं। लेकिन जानकार सूत्रों के अनुसार यह सारा कागज पर ही अधिक हो रहा है, जमीन पर कम।

मौजूदा शासन समाज के कमजोर वर्गों का सबसे बड़ा हितैषी होने का दावा करता है। परन्तु कमजोर वग आज भी उतने ही कमजोर हैं, जितने कि पहले थे। कुछ वर्ष पूर्व १९६१ में जब पंडित नेहरू प्रधानमंत्री थे, कमजोर वर्गों का स्थिति की जाँच करने और उनको ऊपर उठाने के लिए, सुझाव देने के लिए एक कमिटी* या अध्ययन मंडल (Study group) केन्द्रीय सरकार ने नियुक्त किया था और मुझे ही उसका अध्यक्ष बनाया था। कमिटी ने परिश्रम करके रिपोर्ट तैयार की और अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं। लेकिन आज तक उनपर अमल नहीं हुआ। इस अनुभव के बाद मैंने तय कर लिया था कि किसी सरकारी कमिटी में भाग नहीं दूँगा। अब, सम्पूर्ण क्रांति का एक सिपाही होने के नाते मैं मानता हूँ कि यह क्रांति सर्वप्रथम उनको ऊपर उठाने के लिए है, जो समाज का सबसे कमजोर अंग है, और जो विकास की सबसे निचली सीढ़ी पर रह गया है। ऐसी परिस्थिति में हमारे कार्यक्रम की दिशा

---

* Study group of welfare of the weaker section of the village community.

क्या होनी चाहिए, यह जाहिर है। हम गाँवों में जायें, किसानों और मजदूरों के बीच जायें, हरिजन और आदिवासी जनता के बीच जायें और उनके दुख-दर्द को बाँटने के लिए जो भी संभव हो, वह करें।

नये दल का निर्माण

अंत में एक और विषय की चर्चा करके इस चिट्ठी को मैं समाप्त करूँगा। आपने सुना ही होगा कि बम्बई में मैंने एक नये राजनीतिक दल के निर्माण की घोषणा की थी। अभी नया दल बना तो नहीं है, लेकिन उसके बनने की आशा है। .इनमें से इस आन्दोलन के दौरान जिस राजनैतिक दलों का सक्रिय सहयोग मिला उनमें समाजवादी दल, भारतीय जनसंघ, संगठन कांग्रेस, भारतीय लोकदल, क्रान्तिकारी समाजवादी दल (आर० एस० पी०) सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर, कम्यूनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी, मार्क्सवादी समन्वय समिति (को आर्डिनेशन कमिटी), शिरोमणि अकाली दल आदि हैं। इनमें से समाजवादी, जनसंघ, भारतीय लोकदल और संगठन कांग्रेस के प्रतिनिधियों तथा कुछ निर्दलीय राजनेताओं की बैठक* गत २०-२१ मार्च को बम्बई में मेरी उपस्थिति में हुई थी और उन्होंने सब को मिलाकर एक नया दल बनाने का निश्चय प्रकट किया था। तदनुसार एक संचालन समिति गठित की गयी जिसके सदस्य थे सर्वश्री एन० जी० गोरे (समाजवादी), ओमप्रकाश त्यागी (जनसंघ), एच० एम० पटेल (भालोद) और शांतिभूषण (संगठन कांग्रेस)। श्री गोरे उसके संयोजक थे। इस समिति ने प्रस्तावित नये दल के लिए नीति और कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की और उसे अपने सदस्यों के बीच प्रसारित किया। फिर २२-२३ मई को इन चार दलों के प्रतिनिधियों की दूसरी बैठक बंबई में ही हुई। बैठक ने सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित कर मुझसे अनुरोध किया था कि मैं ही एक नये दल के निर्माण की घोषणा कर दूँ। तदनुसार २५ मई को मैंने अपने निवास पर एक

---

* इस बैठक में क्रांतिकारी समाजवादी दल (RSP) के नेता श्री त्रिदिव चौधरी तथा द्रविड़ मुनेत्र कषगम के सांसद श्री इड़ा सेजियन पर्यवेक्षक के रूप में शामिल हुए थे।

पत्रकार सम्मेलन बुलाकर नये दल की घोषणा कर दी, यद्यपि उसका नामकरण भी अभी नहीं हो पाया था। इस दल के निर्माण के लिए एक बुनियादी शर्त यह थी कि सर्वप्रथम उपर्युक्त चार दलों के सदस्य व्यक्तिगत रूप से नये दल में शामिल हो जायेंगे और उन दलों को विघटित कर दिया जायेगा। यह भी तय हुआ था कि नये दल का दरवाजा आंदोलन-समर्थक अन्य दलों के लिए तथा उन लोगों के लिए खुला रहेगा जो कांग्रेस से निकलकर आये हैं, या जो कभी किसी दल में नहीं रहे हैं, परन्तु इस आंदोलन से गुजरे हैं। लेकिन इस बीच कुछ ऐसी बातें हुईं जिनके कारण नये दल के निर्माण की प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ पायी है। लेकिन मुझे विश्वास है कि नया दल बनकर रहेगा, क्योंकि परिस्थिति की आकांक्षा है कि ऐसा एक मजबूत विरोधी दल बने जो सत्तारूढ़ कांग्रेस का राजनीतिक विकल्प हो सके।

मेरी भूमिका

जब से नये दल के निर्माण की घोषणा मैंने की है, मेरे बारे में यह भ्रम फैला है कि अब मैं दलीय राजनीति में भाग लेने लगा हूँ। मैं वर्षों से निर्दलीय मंच से काम कर रहा हूँ और दल एवं सत्ता की राजनीति से अलग रहा हूँ। फिर भी मैं हमेशा यह मानता रहा हूँ कि अगर इस देश में संसदीय लोकतंत्र को सफलतापूर्वक चलाना है तो एक मजबूत विरोधी दल का होना अत्यावश्यक है। एक ऐसे दल के निर्माण की कोशिशें पहले भी हुई हैं और उनका मैंने सदैव स्वागत किया है। परंतु बिहार आंदोलन के सिलसिले में जब आंदोलन-समर्थक दल एक दूसरे के नजदीक आये और संघर्ष की आग से गुजरे तो उन्होंने महसूस किया कि उनके एकजुट होने का समय आ गया है। इस दिशा में पहले कदम के तौर पर गुजरात में 'जनता मोर्चा' बना और तब से विभिन्न आंदोलन-समर्थक दलों के एकीकरण की बात जोरों से चल रही है। शायद आपमें से कुछ लोगों को याद होगा कि बिहार आंदोलन के क्रम में एक निर्दलीय जन-आंदोलन की आवश्यकता पर बल देने के साथ-साथ मैं यह भी कहता रहा हूँ कि इस आंदोलन के गर्भ से एक नयी राजनीतिक शक्ति का उदय होगा। अब सम्भव है, वह राजनीतिक शक्ति एक नये दल के रूप में उभर कर सामने आये।

इस सिलसिले में एक बात का जिक्र कर देना आवश्यक समझता हूं। मैं आज भी अपने उस पुराने संकल्प पर दृढ़ हूँ कि दलीय या सत्ता की राजनीति में स्वयं भाग नहीं लूँगा। यानी, मैं न तो कभी चुनाव लड़ूँगा और न सत्ता ग्रहण करूँगा। सत्ता की आकांक्षा मैंने कभी नहीं की, क्योंकि, मैंने हमेशा राज्य-सत्ता के बजाय जन-सत्ता पर भरोसा किया है और इस शक्ति के द्वारा ही सामाजिक-परिवर्तन एवं निर्माण को हल करने का सपना देखा है। बिहार आंदोलन के मार्फत मैंने उसी दिशा में प्रयास किया है, परंतु लोकतांत्रिक सन्दर्भ में, विशेषकर संसदीय लोकतन्त्र के सन्दर्भ में, एक राजनीतिक विकल्प की आवश्यकता मैंने हमेशा स्वीकार की है और आज उसको तीव्रता से महसूस कर रहा हूँ। वर्तमान परिस्थिति में, जब सत्तारूढ़ दल लोकशाही को तानाशाही में बदलने पर उतारू है, एक ऐसे दल का होना अनिवार्य है जो लोकतंत्र में निष्ठा रखे और जनता की राजनीतिक आकांक्षाओं का प्रतीक बनकर मौजूदा तानाशाही से संघर्ष करने तथा उसे पराजित करने की क्षमता हासिल कर सके।

युवा संगठनों का एकीकरण

राजनीतिक दलों के एकीकरण की दिशा में प्रयास करते हुए मैंने तीव्रता से यह महसूस किया है कि इन दलों से संबधित या प्रभावित जो युवा संगठन हैं, उन्हें भी एक हो जाना चाहिए। बिहार आंदोलन के क्रम में और अब इमरजेंसी के विरोध में जिन युवा संगठनों ने सक्रिय भूमिका निभायी है, उनमें छात्र संघष समिति के अलावा समाजवादी, युवजन सभा (दोनों गुट), विद्यार्थी परिषद, युवा कांग्रेस (संगठन) तरुण शांति सेना, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, नव निर्माण समिति, लोहिया विचार मंच डेमाक्रेटिक स्टूडेंट्स आरगेनाइजेशन आदि हैं। आंदोलन के गर्भ से निर्दलीय छात्र-युवा संघर्षवाहिनी पैदा हुई। तरुण शांति सेना के युवक संघर्ष वाहिनी में विलीन हो चुके हैं। लोहिया विचार मंच के युवकों ने भी संघर्ष वाहिनी में शामिल होने का निश्चय किया है। बाकी जो युवा संगठन किसी दल से संबंधित या प्रभावित हैं, उनके एकीकरण का विचार मैंने प्रस्तुत किया है। अगर यह विचार स्वीकृत हुआ तो देश में एक विराट युवा शक्ति का उदय होगा और वह शक्ति अजेय होगी।

निर्दलीय लोक-मंच, युवा-मंच

मैं जब दलीय एकीकरण की बात कहता हूँ तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मैंने निर्दलीय लोक-मंच और युवा-मंच के निर्माण का विचार छोड़ दिया है या उसकी आवश्यकता अब महसूस नहीं करता। मैं मानता हूँ कि इस प्रकार का मंच तो हर हालत में जरूरी है। अगर आज विरोधी पक्ष भी सत्तारूढ़ हो जाये तो उसपर अंकुश रखने के लिए इस निर्दलीय मंच की आवश्यकता होगी। यह मंच एक तरफ तो लोक-तंत्र के प्रहरी का काम करेगा और जनता के प्रतिनिधियों को सही मार्ग पर रखने का प्रयत्न करेगा, दूसरी तरफ वह सम्पूर्ण क्रांति का वाहक होगा और परिवर्तन की शक्तियों को संगठित कर उसकी प्रक्रिया को सतत् आगे बढ़ाने में सहायक होगा। इस दृष्टि से सोचने पर आन्दोलन के दोनों मोरचों का—राजनैतिक दलों का मोरचा और जनता का निर्दलीय मोरचा—महत्व स्पष्ट हो जायेगा।

मैं तो अब घायल सिपाही हूँ

चिट्ठी समाप्त करने के पूर्व एक और बात आपसे, खासकर अपने छात्र एवं युवक मित्रों से कहना चाहता हूँ। स्थापित सत्ता के विरुद्ध यह संघर्ष तो आपने ही छेड़ा था। मैं तो बाद में, आपके आमन्त्रण पर, इसमें शामिल हुआ। उस समय भी मैंने कहा था कि इस संघर्ष का, इस क्रांति का, नेतृत्व आपको स्वयं करना है। परन्तु आपके बार-बार आग्रह करने पर मैंने आपका सारथी बनना स्वीकार किया। अब तो मैं एक घायल सिपाही हूँ। ऐसी हालत में चाहते हुए भी मैं कितना कर सकूँगा? सम्पूर्ण क्रांति की लंबी लड़ाई के लिए नयी शक्ति चाहिए। गाँव से लेकर प्रदेश और देश तक नये नेतृत्व की जरूरत है। हर गाँव, हर शहर, हर विद्यालय और हर कारखाने में ऐसे लोगों को सामने आना चाहिए जो सम्पूर्ण क्रांति के मूल्यों को स्वीकार करते हों, लोक-तंत्र और नागरिक स्वतंत्रता में निष्ठा रखते हों तथा संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर नया बिहार और नया भारत बनाने में अपनी शक्ति लगाने को तैयार हों। मैं जब तक जिंदा हूँ आपके साथ हूँ—चर्चा के लिए, सलाह-मशविरे के लिए, लेकिन इतना समझ लीजिए कि जूआ

आपके कंधों पर है, अ‹ र क्रांति का रथ आपको ही खींचना है। यह लड़ाई, जैसा कि मैं पहले भी आपसे कह चुका हूँ, बहुत लम्बी है। इसका लक्ष्य मात्र सत्ता-परिवर्तन करना नहीं, समाज का सर्वांगीण परिवर्तन करना है। इसलिए लम्बे अर्से तक जूझने की तैयारी आपको होनी चाहिए। इतिहास की शक्तियाँ आपके पक्ष में हैं। अतः आप पूरे आत्म-विश्वास के आगे बढ़ते जायें। आपकी विजय निश्चित है।

इन शब्दों के साथ मैं आ पमें से प्रत्येक भाई-बहन को अपनी मंगल कामनाएँ भेजता हूँ और आशा करता हूँ कि मुझ पर आपका प्रेम बना रहेगा। अब तक का सारा जीवन मैंने आपकी सेवा में, इस देश की सेवा में लगाया है। अब भी आपकी कुछ सेवा कर सकूँ, यही तमन्ना मेरे मन में है। भगवान से प्रार्थना है कि वह मुझे इतना बल दे कि मेरा शेष जीवन भी आपके कुछ काम आ जाये।

पटना,

२८ अगस्त, १९७६

आपका सस्नेह

जयप्रकाश नारायण

पुनश्च:

संवैधानिक संशोधन का प्रश्न और चुनाव

चिट्ठी समाप्त करने के बाद मेरे ध्यान में कई बातें आयीं जिनके बारे में आपसे कुछ कहना जरूरी समझता हूँ।

एक तो संविधान को संशोधित करने का सवाल है। आपने सुना होगा कि इन्दिराजी वर्तमान लोकसभा से ही संविधान को बुनियादी रूप से संशोधित करा लेना चाहती हैं। इस लोकसभा का कार्यकाल पिछले मार्च महीने में ही समाप्त हो चुका है। परन्तु इमरजेन्सी को अनुचित रीति से कायम रखकर उसका कार्यकाल बढ़ा दिया गया है। वर्तमान लोकसभा को संविधान में कोई संशोधन करने का हक नहीं है, क्योंकि इसके लिए उसको जनता का आदेश नहीं है, मैन्डेट नहीं है, और जो भी मैन्डेट था, वह समाप्त हो चुका है। जनता सर्वोपरि है, इसलिए संविधान में कोई भी संशोधन या परिवर्तन करने के लिए जनता से पूछना चाहिए। इसका एक तरीका यह है कि अभीष्ट संशोधन आम जनता के सामने पेश किये जायँ और उन पर जनता का मत लिया जाये। इस पद्धति को अंग्रेजी में 'रेफरेन्डम' कहते हैं। दूसरा तरीका यह है कि अभीष्ट संशोधनों पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए एक नयी संविधान-सभा बुलायी जाये। इसके पूर्व उन संशोधनों को देश की जनता के बीच प्रचारित किया जाये उनपर राष्ट्रीय चर्चा हो, समाचार-पत्रों में चर्चाएँ हों, और विरोधी पक्षों को तथा अन्य समुदायों को अपनी राय प्रकट करने का अवसर मिले। इस प्रकार से चुनी गयी संविधान-सभा को ही संविधान में बुनियादी संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार होना चाहिए।

लोकसभा भी संविधान में कुछ गैर-बुनियादी संशोधन कर सकती है, बशर्ते आम चुनाव के समय अभीष्ट संशोधन निर्वाचक जनता के सामने पेश किये जायें और जनता उनपर राय प्रकट करे। वर्तमान लोकसभा के चुनाव के समय वे संशोधन जो आज सत्तारूढ़ दल पारित कराना चाहता है, जनता के सामने नहीं रखे गये थे। इसलिए इस लोकसभा को उन्हें पारित करने का कतई अधिकार नहीं है।

लेकिन इन्दिराजी इसी लोकसभा से वे सारे संशोधन पास करा लेने के लिए उतारू हैं, क्योंकि उन्हें यह भरोसा नहीं है कि आगे जो

लोकसभा चुनी जायेगी उसमें उनके दल को दो-तिहाई बहुमत मिल सकेगा जो किसी भी संवैधानिक संशोधन को पारित करने के लिए जरूरी है। आज देश में इमरजेन्सी लागू है, समाचारपत्रों पर कठोर सेंसरशिप लगी हुई है, विरोधी पक्षों के नेता जेलों में बंद हैं, जो बाहर हैं, उन्हें सभा करने की, अखबारों में बयान देने की इजाजत नहीं है। लोकसभा में भी यदि विरोधी पक्ष के लोग कोई विचार प्रकट करते हैं तो वह अखबारों में छपने नहीं दिया जाता।

ऐसी परिस्थिति में प्रमुख विरोधी पक्षों ने संवैधानिक संशोधनों के प्रश्न पर संसद की चर्चाओं में भाग लेने से इनकार किया है। उनका यह निर्णय बिल्कुल उचित है। लेकिन इन्दिराजी पर उनके इस निर्णय का कोई असर नहीं दीखता उन्होंने इस अवैध लोकसभा के चालू अधिवेशन में ही संशोधन विधेयक पेश करने कानिश्चयकिया है।[1]

मैं खुद संविधान में समुचित संशोधन करने का हिमायती रहा हूँ। लेकिन मेरी दृष्टि से इन संशोधनों का लक्ष्य लोकतंत्र को मजबूत बनाने का होना चाहिए, मिसाल के लिए, इमरजेन्सी लागू करने के लिए कौन-सी स्थितियाँ जरूरी हैं, इसको संविधान में स्पष्टतापूर्वक अकित करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार इमरजेन्सी के अंतर्गत जो अधिकार शासन को सौंपे गये हैं, उनके दुरुपयोग को रोकने के लिए संविधान में कुछ स्पष्ट मर्यादाओं का उल्लेख होना चाहिए। आज उन मर्यादाओं के अभाव में इमरजेन्सी के अधिकारों का उपयोग दलीय या व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के लिए किया जा रहा है। फिर, संविधान में सुरक्षित मौलिक अधिकारों एंव नागरिक स्वतंत्रताओं को इमरजेन्सी में कहाँ तक स्थगित किया जा सकता है। इस संबंध में भी आवश्यक निर्देश संविधान में होने चाहिए। आज तो संविधान की ही धाराओं का इस्तेमाल संविधान के बुनियादी ढांचे को तोड़ने के लिए किया जा रहा है, और जनता के अधिकार सीमित किये जा रहे हैं। संविधान के ढाँचे में जो छिद्र हैं, जिधर से जनता के अधिकार निकल कर शासक दल के हाथों में इकट्ठे हो रहे हैं, उन छिद्रों को बन्द करना जरूरी है। इन

[1] गत १ सितम्बर १९७६ को लोकसभा में संविधान (४४ वाँ संशोधन) वधेयक विधिमंत्री श्री एच० आर० गोखले द्वारा प्रस्तुत भी किया गया।

उद्देश्यों तथा अन्य ऐसे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अगर संविधान में संशोधन होते हैं तो मैं उनका स्वागत करूँगा।

इन्दिराजी समाजवाद की बातें बहुत करती हैं। उन्होंने भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble) में समाजवाद शब्द को दाखिल कराने का निश्चय किया है। मैं भी समाजवाद का हिमायती हूँ। लेकिन इन्दिराजी का समाजवाद, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ,सरकार-वाद या राज्यवाद का पर्याय है। ऐसे समाजवाद को संविधान पर आरोपित कर वे सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत बनाना चाहती हैं। जहाँ तक संपत्ति के अधिकार का संबंध है, मैं हमेशा इस बात का हिमायती रहा हूँ कि संपत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की सूची से अलग किया जाना चाहिए। लेकिन बाकी जो मौलिक अधिकार और स्वतंत्रताएँ हैं, जैसे भाषण एवं अभिष्टव्यक्ति की स्वतंत्रता, कहीं जाने-आने की स्व-तंत्रता,संघ बनाने और सभा करने की स्वतन्त्रता आदि उनपर कोई आँच नहीं आनी चाहिए।

लेकिन चाहे जो भी संशोधन हम या वे संविधान में करना चाहें उनके लिए जनता का आदेश लेना एक अनिवार्य शर्त है। जनता के आदेश के बिना संविधान का एक शब्द भी बदलना अनुचित है, अवैधानिक है, अलोकतांत्रिक है।

इन्दिराजी संविधान को संशोधित करने के लिए इतनी व्यग्र इसलिए हैं कि वे इन संशोधनों के द्वारा अपनी सत्ता को सुरक्षित रखना चाहती। हैं। स्पष्टत: उनकी मंशा यह है कि जनता के अधिकारों एवं नागरिक स्वतंत्रताओं को तथा न्यायपालिका की स्वाधीनता को सीमित कर भारतीय लोकतंत्र को ऐसा लूला-लंगड़ा बना दिया जाय कि उनकी सत्ता को कोई चुनौती नहीं दे सके और इस देश का शासन हमेशा के लिए उनके हाथों में और उनके बाद उनके वंश के हाथों में रहे। इमरजेन्सी लागू होने के बाद भारत की राजनीति में श्री संजय गांधी का प्रवेश जिस ढंग से हुआ है और जिस प्रकार से उन्हें ऊपर उछाला जा रहा है, उससे यह जाहिर है कि इन्दिराजी चाहती हैं कि उनके बाद उनके सपत्रप्रधान मंत्री के सिंहासन पर बैठें।

इस प्रकार हमारे देश में लोकतंत्र के स्थान पर एक व्यक्तितंत्र या वंशतंत्र को प्रतिष्ठित किया जा रहा है, एक राजतंत्र की बुनियाद डाली जा रही है। अब जनता को तय करना है, युवकों को तय करना है कि इस देश में क्या चलेगा—लोकतंत्र या राजतंत्र? अगर लोकतंत्र चलेगा तो आज संसद से जो कुछ कराया जा रहा है, उसके खिलाफ जोरदार आवाज उठानी होगी और तानाशाही के बढ़ते हुए चरण को पीछे ढकेलना होगा। यह आप अपनी संगठित शक्ति से ही कर सकते हैं। हमारे शासकों में अभी यह हिम्मत नहीं हैं कि वे लोकतंत्र की नकाब को उतार फेंकें और तानाशाही का ताज पहन लें। वे लोकतंत्र के नाम पर राजतन्त्र चलाना चाहते हैं। इसलिए यह सम्भव है कि संविधान को बदलकर उसे अपनी व्यक्तिगत तानाशाही के अनुकूल बना लेने के बाद आम चुनाव कराने की घोषणा वे कर दें। शासकों की ओर से यह-बार-बार कहा गया है कि इमरजेन्सी के रहते हुए भी चुनाव हो सकते हैं। इमरजेन्सी में चुनाव तो नहीं, चुनाव का नाटक अवश्य हो सकता है, क्योंकि अगर इमरजेन्सी कायम रहती है तो सभा-सम्मेलन पर रोक लगी रहेगी, विरोधी पक्षों को सभा करने की इजाजत नहीं दी जायेगी और और अगर दी भी गयी तो जनता को उनकी सभामें आने नहीं दिया जायेगा। कानून और व्यवस्था कायम करनेके नामपर सरकारी पुलिस अधिकारियों से कुछ भी कराया जा सकता है। वे सड़क पर लोगों का चलना-फिरना भी बन्द कर दे सकते हैं। ऐसा उन्होंने बार-बार किया है। ऐसी स्थिति में स्वतंत्र और सही ढंग से चुनाव नहीं हो सकता। यह भी सम्भव है कि सरकार इमरजेन्सी उठाने की घोषणा भी कर दे, लेकिन व्यवहार में इमरजेन्सी लागू रखकर विरोधी पक्षों को कुछ नहीं करने दिया जाये। अभी उस दिन १८ अगस्त को श्रीमती गाँधी ने कोलम्बो में भारतीय समुदाय के सामने भाषण करते हुए कहा कि इमरजेन्सी बहुत ढीली कर दी गयी है और समाचार-पत्रों पर अब सेंसरशिप नहीं है। ये दोनों बातें गलत हैं। सेंसरशिप का यह हाल है कि समाचारपत्रों में इन्दिराजी तथा उनके दल के लोगों के अलावा और किसी के भाषण-वक्तव्य नहीं छपते। भाषण-वक्तव्य छपना तो दूर, विरोधी लोगों के नाम तक नहीं छपते। मेरा ही उदाहरण लीजिये। उस दिन (३० जुलाई को) मैं साल भर के बाद पटना लौटा,

बीमार होकर लौटा लेकिन। पटना के अखबारों में यह खबर नहीं छपने दी गयी कि मैं यहाँ आया हूँ। बिहार के बहुत सारे लोगों को अभी तक यह मालूम नहीं है कि मैं डेढ़ महीने से पटना में हूँ। पटना के फोटो-ग्राफरों को हुक्म है कि जयप्रकाश नारायण का वे चित्र नहीं ले सकते। ऐसी कठोर पाबन्दियाँ समाचारपत्रों पर लगी हुई हैं, फोटोग्राफरों पर लगी हुई हैं। लेकिन इन्दिराजी दुनिया से कह रही हैं कि यहाँ सेंसरशिप नहीं है। जिस देश की प्रधान मंत्री इस तरह झूठ बोलती हों, वहाँ क्या नहीं हो सकता ? मुझे भय है कि किसी दिन दुनिया से वे कह देंगी कि इमरजेन्सी बिल्कुल उठा ली गयी, लेकिन वह लागू रहेगी। जिस तरह आज सेंसरशिप लागू है और यह प्रचार किया जा रहा है कि सेंसरशिप समाप्त कर दी गयी है।

अब सवाल यह है कि इमरजेन्सी और सेंसरशिप लागू रखते हुए चुनाव की घोषणा हो गयी तो आप क्या करेंगे ? विरोधी पक्षों के लोग क्या करेंगे ? इस प्रश्न पर विरोधी पक्षों ने अभी तक कोई निर्णय नहीं किया है। अभी तो यही पता नहीं हैकि चुनाव होंगे या नहीं अगर चुनाव होंघे तो फिरे उन्हें सोचना होगा और तय करना होगा कि उन्हें उस परिस्थिति में क्या करना है। मेरी तो राय है कि हर परिस्थिति में स्वतंत्र और सही चुनाव हों, इसके लिए आपको डटना चाहिए, युवकों तथा छात्रों में भय त्याग कर आगे आना चाहिए और चुनाव में होने-वाली धाँधली को रोकना चाहिए। लोकतंत्र को वापस लाने के लिए और उसकी हिफाजत के लिए यह आवश्यक है कि आप निडर बनें, हर युवक और छात्र निडर बने, भारत का और बिहार का बच्चा-बच्चा निडर बने। मुझे यह भरोसा है कि इस देश के युवक और छात्र किसी भी कीमत पर लोकतंत्र के झंडे को झुकने नहीं देंगे और वैयक्तिक एवं नागरिक स्वतंत्रता की मशाल को अपनी आहुति देकर भी जलाये रखेंगे।

महिला चरखा समिति

कदमकुआँ, पटना—३ **—जयप्रकाश नारायण**

२ सितम्बर ७६

जनता का माँग-पत्र

६ मार्च १९७५ को संसद के सामने जो ऐतिहासिक जन-प्रदर्शन हुआ उसका नेतृत्व करते हुए लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने भारत की जनता की ओर से लोकसभा एवं राज्यसभा के अध्यक्षों को एक माँग-पत्र समर्पित किया जो यहाँ प्रस्तुत है :

हम भारत के नागरिक बिहार की जनता के संघर्ष के प्रति, जो पूरे देश की भावनाओं का प्रतीक बन गया है, एकात्मकता जाहिर करने के लिए यहाँ इकट्ठे हुए हैं। ऐसे समय में जब सार्वजनिक जीवन और सुशासन के बुनियादी सिद्धान्त कुचले जा रहे हैं, नागरिकों का कर्तव्य है कि वे अपना विरोध जाहिर करें। हमारा आज का यह अभियान न्याय की प्राप्ति और लोकतन्त्र की रक्षा के लिए है।

हम समाज में वह सम्पूर्ण क्रांति लाने के लिए कृतसंकल्प हैं जो गांधीवादी ढाँचे के अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक समानता, वास्तविक लोकतंत्र और नैतिक मूल्यों पर आधारित एक नयी व्यवस्था का निर्माण करेगी।

अपने संजोये गये इन उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए हम निम्नलिखित अत्यावश्यक माँगों की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं।

बिहार और गुजरात में चुनाव

बिहार-विधान-सभा ने राज्य के लोगों का विश्वास खो दिया है। विधान-सभा जनता के संपर्क में आने से भय खाती है। उसने अपने आपको अवरोधों और संगीनों के घेरे में बंद कर लिया है। वह एक लम्बे अरसे से जनता की धड़कनों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। वह एक ऐसी सरकार का समर्थन करती है जिसने राज्य में कुशासन कायम कर रखा है और जनता के चिर-आकाँक्षित अधिकारों को पैरों-तले रौंद डाला है।

कुशासन और सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार समाप्त करने के बजाय बिहार-विधान-सभा भी उसमें भागीदार बन गयी है। राजनीतिक

प्रभु, जनता, लम्बे अरसे से उस कानूनी प्रभु की बर्खास्तगी की माँग कर रही है जिसने अनुचित रूप से सत्ता अधिकृत कर रखी है।

गुजरात में एक साल पहले जन-आन्दोलन के द्वारा राज्य-सरकार को अपदस्थ कर विधान-सभा भंग करायी गयी, पर वहाँ अभी तक स्वतंत्र चुनाव कराने का आदेश नहीं हुआ है। इसलिए हमारी पहली माँग यह है कि तुरंत बिहार-सरकार बर्खास्त की जाय और विधान-सभा भंग की जाय तथा शीघ्र बिहार और गुजरात में चुनाव कराने के आदेश जारी किये जायें।

जनता के सामाजिक-आर्थिक अधिकार

सरकार की विनाशकारी नीतियों का परिणाम यह हुआ है कि एक तरफ तो आर्थिक गतिरोध पैदा हो गया है और दूसरी तरफ गरीबी बढ़ी है, कीमतें आसमान छूने लगी हैं और बेरोजगारी में वृद्धि हुई है। आवश्यक वस्तुओं का अभाव कमजोर तबके के लोगों की जिन्दगी का एक स्थायी अंग बन गया है। लगभग ६० फीसदी लोग आधा पेट खाकर अपनी जिन्दगी बसर कर रहे हैं और ऐसे लोगों की संख्या में भयानक गति से वृद्धि हो रही है। सामाजिक विषमताएँ बढ़ती जा रही हैं।

लोगों के महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक अधिकारों की सुरक्षा का अविलम्ब प्रबन्ध आवश्यक है और इसके लिए निम्नलिखित कदम उठाये जायँ :

१. समाज के कमजोर तबके, खासकर आबादी के ६० प्रतिशत सबसे गरीब लोगों को जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की चीजें उस दाम पर उपलब्ध करायी जायँ, जो उनकी सामर्थ्य के भीतर हो।

२. आवश्यक वस्तुओं के मूल्य उनकी लागत से सम्बन्धित हों। साथ ही, कृषि और औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों के बीच समुचित संतुलन हो। मूल्यों में स्थिरता लायी जाय और मूल्य-वृद्धि राष्ट्रीय आय में होने-वाली वृद्धि की रफ्तार से अधिक नहीं हो।

३. सबको आवश्यकता-आधारित न्यूनतम मजदूरी और आमदनी की गारंटी मिले।

४. आर्थिक विषमताएँ इतनी कम कर दी जायँ कि वे एक और दस के अनुपात की समुचित मर्यादा के अन्दर आ जायँ।

५. ऐसे कारगर भूमि-सुधार किये जायँ जिनके परिणामस्वरूप भूमि का समतामूलक पुनर्वितरण सुनिश्चित हो, 'जो जोते जमीन उसकी' के सिद्धान्त के आधार पर स्वामित्व सुरक्षित हो, भूमिहीनों को बासगीत की जमीन मिले तथा खेतिहर मजदूरों को समुचित मजदूरी सुनिश्चित रूप से प्राप्त हो जिसका एक हिस्सा उन्हें अनाज के रूप में दिया जाय।

६. सब लोगों को पूर्ण रोजगार का आश्वासन मिले। इसके लिए उपयुक्त तकनीक के प्रयोग द्वारा कृषि और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाय। इसी प्रकार औद्योगीकरण के कार्यक्रम ऐसी तकनीकों और योजनाओं पर आधारित किये जायँ जिनमें मानवशक्ति का इस्तेमाल व्यापक पैमाने पर हो सके।

७. राष्ट्रीय मितव्ययिता पर आधारित शासनतंत्र का निर्माण इस सम्बन्ध में दिशा-निर्धारण के तौर पर किया जाय। इसमें विलास की वस्तुओं के आयात तथा देश में उनके निर्माण पर रोक लगायी जाय।

लोकतांत्रिक अधिकार और नागरिक स्वतंत्रता

संविधान की भावना के विरुद्ध सरकार ने राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति कायम कर रखी है। विधि के शासन का स्थान आंतरिक सुरक्षा कानून (मीसा), भारत रक्षा कानून (डी०आई०आर०) तथा अध्यादेशों के शासन ने ले लिया है। बहुसंख्यक लोगों को लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा है, जनता के वैध एवं शान्तिपूर्ण संघर्ष को केन्द्रीय एवं राज्य पुलिस द्वारा दबाया जा रहा है। लोकतंत्र के सत्त्व की पुनः स्थापना, सुरक्षा एवं विस्तार के लिए हम माँग करते हैं कि—

१. आपातकालीन स्थिति तथा मीसा, डी० आई० आर० और नागरिक स्वतंत्रताओं के विरोध में काम करनेवाले अन्य कानूनों को अविलम्ब वापस लिया जाय।

२. स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों के सभी शिक्षक और गैर-शिक्षक कर्मचारियों को सारे राजनीतिक और ट्रेड यूनियन सम्बन्धी अधिकार दिये जायँ।

३. सार्वजनिक क्षेत्र के व्यावसायिक और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के मजदूरों और कर्मचारियों को सारे राजनीतिक और ट्रेड यूनियन सम्बन्धी अधिकार प्रदान किये जायँ।

स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव

यह अत्यन्त आवश्यक है कि संसद और विधानसभाएँ जन-आकांक्षाओं के अधिक अनुकूल बनें। चुनावों को सरकारी मशीनरी, धन-शक्ति और बल-प्रयोग से प्रभावित न होने दिया जाय। अतः हमारा आग्रह है कि—

१. संयुक्त चुनाव सुधार संसदीय समिति, जिसमें शासक दल के सदस्य भी शामिल थे, की सर्वसम्मत सिफारिशें अविलम्ब कार्यान्वित की जायँ।

२. चुनाव की तिथियाँ घोषित होने के बाद सरकार को महत्त्वपूर्ण नीति-वक्तव्य देने, परियोजनाओं की मंजूरी देने, शिलान्यास करने और मतदाताओं को लुभा सकनेवाले अन्य ऐसे कार्यक्रमों की घोषणा करने की इजाजत न हो।

३. चुनाव आयोग एक बहुसदस्यीय निकाय बने जिसमें असंदिग्ध चरित्र-वाले व्यक्ति, जैसे सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के जज रहें। उनका चयन एक बोर्ड के जरिये किया जाय, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, प्रधानमंत्री और विरोधी दल के नेता (या विरोधी दल के ऐसे प्रतिनिधि जो सर्वमान्य हो) रहें।

४. राजनीतिक दलों के लिए चुनाव-खर्च का विवरण देना अनिवार्य हो। विवरण में वे सारे खर्च शामिल किये जायँ जो दलों द्वारा अलग-अलग उम्मीदवारों और सामान्य दलीय कार्यक्रमों पर किये गये हों।

५. शासक दल के लिए रेडियो, टेलिविजन, सरकारी वाहनों, हवाई जहाज तथा अन्य सरकारी साधनों का दलिय उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल निषिद्ध होना चाहिए। विरोधी दलों के साथ बराबरी की शर्तों पर उनका इस्तेमाल किया जा सकता है।

६. मतदान से एक सप्ताह पहले पूरे चुनाव तक शराबबन्दी लागू की जाय।

७. मतदान के दिन अनिवार्य सेवाओं के लिए इस्तेमाल में आ रहे गाड़ियों को छोड़कर निजी मोटरगाड़ियों सहित तमाम सवारी गाड़ियों का चलना रोक दिया जाय।

८. मतगणना हर मतदान-केन्द्र पर हो, मतदान के तुरत बाद ही चुनाव-केन्द्र के मतपत्रों का हिसाब जाहिर कर दिया जाय और तीन या चार मतपेटियों की जगह सिर्फ एक ही मतपेटी हर मतदान केन्द्र को उपलब्ध रहे। परन्तु, आकस्मिक स्थिति के लिए अतिरिक्त प्रबन्ध रखा जाय।

९. हर मतदान-केन्द्र पर, कुल मिलाकर जितने मतपत्र डाले गये हों, या जिनका किसी दूसरी तरह से इस्तेमाल किया गया हो, उनका हिसाब चुनाव लड़नेवाले सभी दलों के उम्मीदवारों के एजेंटों को अवश्य उपलब्ध कराया जाय, जिसमें प्रथम और अन्तिम मतपत्रों की संख्या शामिल रहे।

१०. मतदान करने की उम्र घटाकर १८ वर्ष की जाय।

११. प्रतिनिधियों को वापस बुलाने के अधिकार का समावेश संविधान में किया जाय।

राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण

सत्ता के बढ़ते हुए केन्द्रीकरण तथा सरकार द्वारा लोकतंत्र को समूल नष्ट करने की कोशिश को ध्यान में रखते हुए, वास्तविक स्वशासन के लिए सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्रामपंचायतों, जिला परिषदों, राज्यों और केन्द्र के बीच उसके प्रभावी रूप से वितरण की संवैधानिक गारंटी आवश्यक है।

शिक्षा-सुधार

१. शिक्षा इस माँग-पत्र में निहित आदर्शों के अनुकूल समाज के निर्माण का माध्यम बने और वह पश्चिमीकरण के बदले आधुनिकी-करण का साधन हो।

२. राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा के गुण एवं तत्व के विकास के लिए कारगर कदम उठाये जाँय। मौजूदा ढाँचे में प्रत्येक स्तर पर सुधार किया जाय।

३. माध्यमिक स्तर से शिक्षा को जीविकोन्मुख बनाया जाय और इसके साथ आर्थिक योजना की एक ऐसी प्रणाली हो, जो रोजगार की गारंटी करे। शिक्षण सबंधी नौकरियों को छोड़ अन्य नौकरियों के लिए विश्वविद्यालय की डिग्री आवश्यक न रहे।

४. पाँच वर्षों के अंदर प्राथमिक शिक्षा और वयस्क शिक्षा के सार्वत्रिक प्रसार को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाय।

५. शिक्षण-संस्थाओं में सरकार के हस्तक्षेप पर रोक लगायी जाय। इन संस्थाओ का प्रबंध साधारणतः उनके शिक्षकों को सौंपा जाय और उसमें लोकतांत्रिक ढंग से छात्रों की भागीदारी हो।

राजनीतिक भ्रष्टाचार का उन्मूलन

भ्रष्टाचार हमारे राजनीतिक जीवन के प्राण तत्वो को खाये जा रहा है। इसके कारण विकास की प्रक्रिया छिन्न-भिन्न हो रही है, प्रशासन कमजोर बन रहा है तथा नियम-कानून का मखौल हो रहा है। साथ ही इससे जनता का विश्वास नष्ट हो रहा है और उसका लोक-प्रसिद्ध धैर्य समाप्त हुआ जा रहा है। जन-जीवन को भ्रष्टाचार के कैंसर से मुक्त करने के लिए हमारी माँग है कि

१. उच्चाधिकारयुक्त न्यायाधिकरणो की स्थापना हो और उन्हें प्रधान-मंत्री एवं मुख्यमंत्रियो सहित उच्च पदस्थ व्यक्तियो पर लगाये गये आरोपो की जाँच करने का अधिकार हो। ऐसे मामलो में जहाँ भ्रष्टाचार के आरोपो की पुष्टि हो चुकी हो, दोषी पाये गये व्यक्तियो पर अनिवार्य रूप से मुकदमा चलाया जाय। सभी मामलो में जाँच-रपट अवश्य प्रकाशित करायी जाय।

२. संथानम कमिटी की भ्रष्टाचार क आरोप-सम्बन्धी सिफारिशें लागू की जायँ। यह सन्देह होने पर कि मामला प्रत्यक्ष रूप से जाँच के योग्य है या नहीं, निर्णय सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के द्वारा या जहाँ कार्यपालिका से स्वतंत्र और पर्याप्त अधिकारो से युक्त न्यायाधिकरण हों वहाँ ऐसे न्यायाधिकरण द्वारा किया जाय।

३. एक ऐसा कानून बनाया जाय जिसके अनुसार सभी सार्वजनिक पदाधिकारियों के लिए पद-ग्रहण करनेके तुरंत बाद और तत्पश्चात् समय-समय पर अपनी सम्पत्ति की घोषणा करना अनिवार्य हो